RNI No. 7127/60 डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 56 अंक : 07 कुल पृष्ठ : 36 4 जुलाई, 2019

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

पू. श्री नारायणसिंह जी रेड़ा

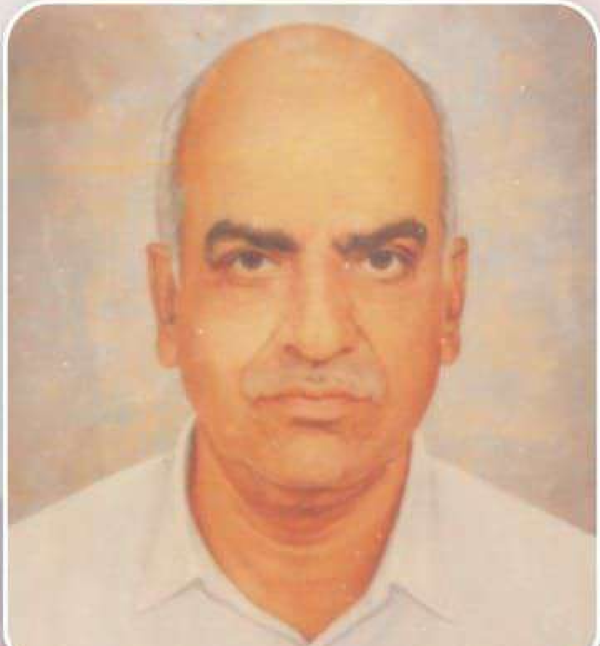

कुछ ऐसे जो शीश चढे पर, फूल बने शरमाते,
युग-युग से रहकर आंखों में, आँख नहीं खटकाते।।
हवा उन्हीं का प्यार चुराकर मधुर गीत है गाती,
है याद उन्हीं की घाव मेरे सहलाती।।

केन्द्रीय जल-शक्ति मंत्री **श्री गजेन्द्र सिंह शेखावत** (महरोली), सांसद **राज्यवर्द्धन सिंह राठौड़** एवं सांसद **दीया कुमारी** को हार्दिक बधाई एवं भविष्य हेतु शुभकामनाएं

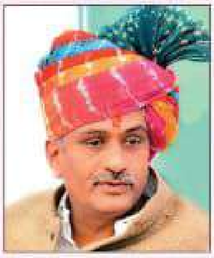
गजेन्द्र सिंह शेखावत

राज्यवर्द्धन सिंह राठौड़

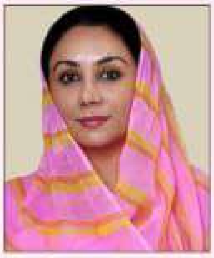
दीया कुमारी

नीरसिंह सिंघाणा, नागौर
हाल-मुम्बई 9223341965

शम्भूसिंह धीरा, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9967323958

प्रेमपालसिंह दूदवा, बाड़मेर
हाल-बाड़मेर 8890216122

जालमसिंह चारणीम, जालोर
हाल-मुम्बई 9320770151

नटवरसिंह रेवत, जालोर
हाल-मुम्बई 9699960591

नाथूसिंह काठाड़ी, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9324291258

राजूसिंह सालवाखुर्द, जोधपुर
हाल-मुम्बई 8828892877

नेतसिंह चाबा, जोधपुर
हाल-मुम्बई 9987222459

फतेहसिंह पांचोटा, जालोर
हाल-मुम्बई 9833516344

रामसिंह धीरा, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9969115365

नेपालसिंह गोला, बनासकांठा
हाल-मुम्बई 9967484911

नारायणसिंह धीरा, बाड़मेर
9819694536

शम्भुसिंह वालियाना, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9920030304

जालमसिंह मिठौड़ा, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9869660717

श्रवणसिंह मवड़ी, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9869626693

राजूसिंह तड़वा, जालोर
हाल-मुम्बई 9029435376

भगवतसिंह काठाड़ी, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9930476781

हिंगलाजसिंह चूली बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9930474319

प्रेमसिंह रेड़ाणा, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9004929732

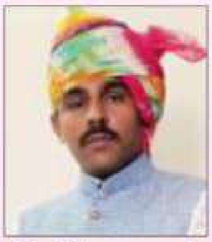
श्रीपालसिंह सुराणा, जालोर
हाल-मुम्बई 9414678466

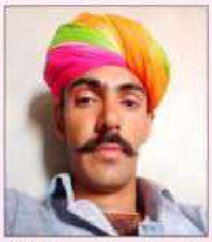
देवीसिंह झलोड़ा, जैसलमेर
हाल-मुम्बई 9029820089

हुकमसिंह पिपळून, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9987793483

वागसिंह M लोहिड़ी, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9768229904

प्रवीणसिंह चारणीम, जालोर
हाल-मुम्बई 7715058174

संघशक्ति

4 जुलाई, 2019

वर्ष : 56 अंक-07

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	06
पू. नारायणसिंह जी रेड़ा	श्री पथिक	10
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	श्री चैनसिंह बैठवास	12
आध्यात्मिक अनुभूतियों की सत्यता	स्वामी यतीश्वरानन्द	14
स्वाधीनता का दीवाना : मेदिनीराय परिहार	श्री गोपालसिंह राठौड़	17
विचार-सरिता (पञ्चचत्वारिंशत लहरी)	श्री विचारक	19
लाड़-प्यार ही नहीं थोड़ी फटकार भी जरूरी	श्री मौर्य	21
क्षत्रिय की कर्तव्यनिष्ठा	श्री नखतसिंह गौरड़िया	23
विश्वामित्रजी ने ब्रह्मर्षि का पद कैसे प्राप्त किया	श्री हनुवन्तसिंह नंगली	25
वाह रे संघ	श्री आसूसिंह	27
मन की तल्लीनता	संकलित	28
ईर्ष्या	श्री जोगराजसिंह	31
स्नेह वही दे सकता जो प्रकृति से महान है	श्री जैसू खानपुर	32
अपनी बात		33

समाचार संक्षेप

शिविर :

श्री क्षत्रिय युवक संघ का उच्च प्रशिक्षण शिविर लिटिल एंजल्स सैकेण्डरी स्कूल, गनोड़ा (बांसवाड़ा) में 18 मई से 28 मई तक सम्पन्न हुआ। पात्रता के प्रतिबन्ध के बाद भी बड़ी संख्या में शिविरार्थी शिविर में पहुँचे। शिविर की अवधि में राजस्थान में गर्मी भी अपने तीखे तेवर दिखा रही थी, पर साधना में सर्दी-गर्मी की तीव्रता में भी सहज कर्मरत रहना आवश्यक है। मौसम का उतार-चढ़ाव तो प्रकृति का खेल है, उसी में हमें रहना है इसलिए उसके लिये सहनशक्ति विकसित हो ही जानी चाहिए।

राजस्थान और गुजरात के शिविरार्थी तो बड़ी संख्या में थे ही पर उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के अलावा बिहार का प्रतिनिधित्व भी उच्च प्रशिक्षण शिविर में रहा। अन्य प्रदेशों में जहाँ संघ का कार्य प्रारम्भ हुआ है, उनमें से कुछ जगह यह भ्रम भी है कि विद्यालयी छात्रों के लिये ही संघ का कार्यक्रम है। पर जब यहाँ शिविर देखने जो लोग आए तो उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि यहाँ तो हर उम्र का शिविरार्थी है। हर उम्र के नौकरी-पेशा वाले, व्यापारी, किसान सभी तो हैं और आयु की इतनी भिन्नता, पेशे की इतनी भिन्नता के रहते भी कितना पवित्र पारिवारिक वातावरण शिविर में बना हुआ है।

प्रात: 4 बजे जागरण से लेकर रात्रि दस बजे तक लगातार एक के बाद एक कार्यक्रम में रहने वाली व्यस्तता में शिविरार्थी शिविर के अलावा पूरे संसार से कटा रहता है, जीवन परिवर्तन के लिये ऐसी एकाग्रता आवश्यक है। खेल, चर्चा, प्रवचन और सभी दैनिक कार्यक्रम संस्कार की किरण दे जाते हैं, इसी अभ्यास को बार-बार करने का अवसर जुटाते रहें तो सद्संस्कारों का निर्माण होता है, जीवन में निर्मलता आती है, जीवन बदल जाता है।

श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन से जुड़े कुछ लोग भी शिविर में आए। संघ के बारे में उन्होंने जो सुन रखा था, संघ के प्रति वैसी ही धारणा बनी हुई थी। संघ ठीक राह पर चलने वाली संस्था है यह तो सबका भाव था पर शिविरों में क्या होता है, कैसे प्रशिक्षण होता है, उसका क्या और कैसे प्रभाव पड़ता है, यह स्पष्ट नहीं था। शिविर में आए तो सभी को आनन्द आया, दिमाग में किसी तरह का भ्रम था तो उसका भी निराकरण हो गया और सभी ने हर कार्यक्रम में सम्मिलित होकर भागीदारी निभाई।

एक दिन शिविर में स्नेह मिलन का कार्यक्रम भी रखा गया। शिविरार्थी तो अपने कार्यक्रमों में ही व्यस्त रहे पर क्षेत्र के सहयोगी समाज बन्धुओं और उनके परिवारों से आए बालकों और महिलाओं का कार्यक्रम अलग से रखा गया जिसमें संघ का परिचय दिया गया और पूरे समाज में सामाजिक भाव के निर्माण की आवश्यकता समझाई गई। राजनैतिक रूप से हमारे पिछड़ने का कारण भी सामाजिक भाव का अभाव ही है। संघप्रमुख साहब ने बताया कि संसार से प्राप्त वस्तु संसार की सेवा में लगाएँ और परमेश्वर से प्राप्त आत्मा को परमेश्वर की सेवा में लगाएँ। संघ इसी अभ्यास में रत है और समाज का सहयोग हमें कार्य में तल्लीनता लाने का प्रोत्साहन देता है। संघ हमारी चेतना को ऊर्ध्वगति देने में प्रयासरत है।

एक दिन शिविर में आदिवासी नेताओं के साथ माननीय संघप्रमुखश्री की चर्चा हुई। इसमें घाटोल विधायक, आसपुर विधायक, सेवानिवृत जिला शिक्षा अधिकारी, प्रधानाचार्य व क्षेत्र के प्रमुख आदिवासी कार्यकर्ता उपस्थित रहे। संघप्रमुखश्री ने बताया कि जातियाँ तो एक व्यवस्था है जो किसी न किसी रूप में सदैव रही है, परन्तु जातियों के बीच छोटे-बड़े की बात तो विकृति है। हम सभी ईश्वर की सन्तान हैं तो क्या छोटा, क्या बड़ा? विकृत मानसिकता के कारण जो विकृति पनप गई है, उसे दूर करने की आवश्यकता है, इसके लिये सामुहिक रूप से हमें प्रयासरत रहना है।

शिविरार्थियों को एक दिन बेणेश्वरधाम और त्रिपुर सुन्दरी मंदिर के दर्शनकरने को ले जाया गया। बेणेश्वरधाम क्षेत्र के आदिवासियों का तीर्थ है, वहीं माही, जाखम व सोम नदी का संगम है जिसमें शिविरार्थियों ने स्नान किया और बेणेश्वर महादेव के दर्शन किए। त्रिपुर सुन्दरी वागड़ क्षेत्र का शक्तिपीठ है, इस मंदिर के दर्शन किए और सायंकालीन वन्दना की।

पुष्कर तीर्थ स्थित जयमलकोट में 31 मई से 6 जून तक बालिकाओं का प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न हुआ। शिविर में पात्रता की बाध्यता के उपरान्त भी साढे तीन सौ से ऊपर (365) संख्या में शिविरार्थी बालिकाएँ एवं महिलाएँ सम्मिलित हुई। राजस्थान, गुजरात, उत्तरप्रदेश व मध्यप्रदेश से पहुँची शिविरार्थियों को मर्यादाओं का पालन करने और अपनी जड़ता को चेतनता की ओर ले जाने का प्रशिक्षण मिला। संघ का कार्य मानवता के कल्याण के लिये है, किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये नहीं। पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभावों के कारण समाज में सांस्कृतिक भटकाव आ गया है, उन खतरों से सावधान किया गया। मातृत्व का महत्त्व समझाते हुए श्रेष्ठ माता बनने के लिये जिन सावधानियों की आवश्यकता है, वे भी बताई गई। शिविर में सभी ऐसी रम गई कि विदाई के समय सभी भावनाओं के स्रोत में बहती नजर आई।

आलोक आश्रम बाड़मेर में 7 जून से 10 जून तक मिलन शिविर सम्पन्न हुआ। इस शिविर में श्री क्षत्रिय युवक संघ के नूतन-पुरातन स्वयंसेवकों का बड़ा ही आत्मीयता भरा मिलन सम्पन्न हुआ। पुरातन स्वयंसेवक जो कारण वश अब संघ में सक्रिय नहीं रह पाए, उन्होंने नये स्वयंसेवकों का सेवा भाव देखकर संघ के वर्तमान स्वरूप का परिचय लिया तो पुराने स्वयंसेवकों के अनुभवों का लाभ नए स्वयंसेवकों को मिला। लम्बे अन्तराल के बाद जो इस शिविर में पहुँचे थे, उनका भाव था-

मिले वे ही साँचे मिली नई बातें
खिल गई कली-कली

नये स्वयंसेवकों की मस्ती जैसे कह रही थी-

मन के मोर हुए हैं विभोर
स्वाति बूँद से तृप्त हैं चकोर

वर्ष भर में अनेक शिविर लगते हैं और नये लोग अपने आसपास के शिविरों में सम्मिलित होते रहते हैं। जिनको विभिन्न प्रकार के दायित्व दिए जाते हैं वे भी अपने दायित्व को निभाने में तत्पर रहते हैं इसलिए नये लोगों का तो परस्पर मिलन अनेक बार होता रहता है, पर पुराने स्वयंसेवकों का आग्रह था कि ऐसे मिलन शिविर भी थोड़े-थोड़े अन्तराल के बाद होते रहें।

राजराजेश्वर संस्थान क्षत्रिय पीठ उड्डुपी (कर्नाटक) के संत विश्वाधिराज तीर्थ राजस्थान में गायों सम्बन्धी कार्य से आए हुए थे। उनको पता चला कि क्षत्रियों का शिविर है तो आलोक आश्रम पहुँचे। कहना है, क्षत्रिय ही सुव्यवस्था स्थापित कर सकते हैं। महाभारत के माध्यम से वे क्षात्रधर्म का मर्म समझाते हैं। यहाँ क्षात्रधर्म के व्यावहारिक शिक्षण को देखकर अति प्रसन्न हुए और साथ मिलकर कार्य करने की बात कही।

नई सरकार- लोकसभा चुनाव सम्पन्न हुए और पूर्ण बहुमत से केन्द्र में नई सरकार का गठन हो गया। चुनाव प्रचार में कोई भी दल अथवा उम्मीदवार कोई कसर नहीं रखता और हर बार ही धुआंधार प्रचार होता आया है। लेकिन इस बार के चुनाव प्रचार में वाणी की मर्यादा तार-तार हो गई। विरले ही राजनेता रहे होंगे जिनके बोल बिगड़े नहीं। अपने दल की राष्ट्र के विकास हेतु नीति और उसके लिये विभिन्न योजनाओं का जिक्र तो सुनने में ही नहीं आया। अपने विरोधी पर आरोप, कटाक्ष तो हर किसी की बोली में था लेकिन योजनाएँ अगर कभी प्रकट हुई तो मतदाताओं को रिझाने के लिये मुफ्त में कुछ लुटाने की ही बात की गई। अब चुनाव नहीं है, पाँच साल के लिये सरकार चुन ली गई है। अब तो अपेक्षा है कि स्वस्थ लोकतंत्र की मर्यादाओं में ही सभी दल रहेंगे।

(शेष पृष्ठ 11 पर)

चलता रहे मेरा संघ

(उच्च प्रशिक्षण शिविर भारतीय ग्राम्य आलोकायन आश्रम (आलोक आश्रम) बाड़मेर में 20 मई, 2018 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा शिविरार्थियों हेतु उद्‌बोधित प्रभात संदेश)

शिविर का दसवां दिन प्रारम्भ हो रहा है। कल प्रात:काल जागरण के बाद शिविर विदाई होगी। आज का दिन हमारे पास है और यह है अपने आपका मूल्यांकन करने का। स्वागत के समय कुछ निर्देश दिये थे और समय-समय पर निर्देश दिये जाते रहे। ईश्वर की प्राप्ति के लिये ईश्वर की उपासना, उप आसना, उप का अर्थ है पास में, आसना का मतलब है-बैठना। तो हम ईश्वर के पास में बैठे या नहीं बैठे इसका आकलन करना है। केशरिया ध्वज हमारे भारत के उर में बिठाना है तो सबसे पहले उसे हमारे उर में बिठाना है। केशरिया ध्वज को क्षात्र धर्म का प्रतीक मानकर हम स्वधर्म का पालन करते हैं, तो हमको अन्तिम सिद्धि मिल सकती है, ऐसा बताती है गीता, यही है स्वधर्म, स्वकर्म। तो यहाँ जितने भी निर्देश हमको दिये थे स्वधर्म पालन के वो ईश्वर की प्राप्ति के लिये दिए थे। हमको क्या अनुभूति हुई यह आज के दिन में हम सबको आकलन करना चाहिए। अन्तरावलोकन करना चाहिए। अपनी परीक्षा स्वयं लेनी चाहिए। पाठशालाओं, कक्षाओं में विद्याध्यन कराया जाता है और परीक्षक लोग, शिक्षक लोग विद्यार्थियों की परीक्षा लेते हैं। यहाँ कोई परीक्षक नहीं है, आपको ही अपनी परीक्षा लेनी है। आप में से जो रोजाना परीक्षा लेता था, वो अपना स्वधर्म पालन कर रहा था, स्वकर्म कर रहा था, प्रतिदिन अपना आकलन कर रहा था। जिसने ऐसा नहीं किया तो बाजार से साप्ताहिक किताबें खरीद-खरीद कर पास होने के लिये लेकर आएँ वैसी ही बात हुई, वे क्या भारत के उर में केशरिया ध्वज फहरायेंगे? रोजाना अपना परीक्षण करें। कहीं भूल हुई हो तो उसका सुधार करें। तो आप पायेंगे कि आपसे जो क्षत्रिय युवक संघ की अपेक्षा है उसको आपने पूरा किया है। जिस उद्देश्य को लेकर के आप यहाँ आए हैं, उस उद्देश्य में आप सफल हुए हैं, समीप पहुँचे हैं।

अनेकों लोग इस प्रकार का प्रश्न करते हैं कि ध्यान कैसे किया जाता है? इष्ट का ध्यान करना, यह एक योग की अवस्था है और क्षत्रिय युवक संघ का मार्ग है वह संपूर्ण योग मार्ग है। भारतवर्ष में योग को व्यवस्थित रूप से महर्षि पतंजलि ने संसार को दिया और उसको अष्टांग योग कहते हैं। ध्यान की बात करने वाले मुझे ऐसा लगता है कि अभी तो नर्सरी में भर्ती भी नहीं हुए और सीधी पीएचडी की बात कर रहे हैं। ध्यान सातवीं अवस्था है। सीधे ही सातवीं अवस्था को कैसे प्राप्त करेंगे? बहुत सारे इस प्रकार के गुरु बने हुए लोग लोगों को भ्रमित कर रहे हैं, ध्यान की अवस्था बताते हैं। ध्यान का पहला अंग है यम। दूसरा है नियम। अहिंसा अर्थात् किसी को कष्ट नहीं देना यह यम का पहला भाग है। जो दूसरों को तकलीफ देता है और ध्यान करना चाहता है, वह पाखण्डी है। यम का दूसरा अंग है सत्य। सत्य तो एक परमात्मा के अतिरिक्त और कोई चीज नहीं है। जो सनातन है, जो शाश्वत है, वो सत्य है। फिर भी हम प्रारम्भ कहाँ से करते हैं-वचन से। कि हम सत्य बोलें, सत्य का पालन करें। जैसा देखा, अगर हमसे पूछा जाए तो वही बतायें। अपनी तरफ से न कुछ बढ़ायें और न कुछ घटायें। वह सत्य का पालन करता है, अहिंसा का पालन करता है तो एक दिन योग को प्राप्त होगा। जो इनका पालन नहीं करता वो दम्भी है, गुमराह है। जो बिना इनकी तैयारी के ध्यान सिखाता है वो पाखण्डी है। यहाँ बहुत सरल मार्ग बताते हैं। अहिंसा का पालन करें। सत्य का पालन करें। अस्तेय का पालन करें। अस्तेय का अर्थ है-चोरी न करना। और चोरी क्या है? जिस पर मेरा किसी भी प्रकार का कोई अधिकार नहीं है, उसको अपनी मानना, उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करना। अनाधिकृत रूप से उस पर नजर रखना। यह सब चोरी है। हमने इसका कितना पालन किया है-कही हुई

आज्ञाओं का कितना पालन किया है। फिर है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य केवल सेक्स की बात नहीं है। ब्रह्मचर्य है जो ब्रह्म में विचरण करता है। यह इसका आध्यात्मिक अर्थ होता है। और इसका सामाजिक अर्थ है संयम। अपने मन पर नियंत्रण रखना। इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना। विषयों का चिंतन न करना। यह ब्रह्मचर्य है। इसका जो पालन करता है वह ध्यान की बात करे। अगली बात है यम। अपरिग्रह। परिग्रह का अर्थ है संग्रह करना। अपिरग्रह का अर्थ है संग्रह नहीं करना। लेकिन सारी शिक्षा आज की है संग्रह की। और फिर ध्यान की बात करते हैं। फिर कक्षाओं में कई महात्माओं के पास जा-जा कर ध्यान का पाठ पढ़ते हैं। चोर लोग ईमानदारी की बात करते हैं। कितना बड़ा पाखण्ड चल रहा है। और क्षत्रिय युवक संघ कितना सरल मार्ग बताता है जो हमारे ऋषि-मुनियों ने बताया। तो इन पाँच यम का पालन करो तो ध्यान नहीं लगेगा, लेकिन यह ध्यान यात्रा का प्रारम्भ हो जाएगा। फिर है पाँच नियम उनका पालन करें। विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है। तनसिंहजी की पुस्तकों में दूसरे लोगों की पुस्तकों में और यहाँ भी कई बार आपको बताते हैं। उनका जो पालन नहीं करता है और जो ध्यान की बात करता है वो कुछ करना नहीं चाहता।

आपको विद्यालय में ''क'' पढ़ाए ''ए'' पढ़ाए और आप कहें कि हमको तो डिग्री की बात बताओ वो कैसे मिलेगी? सरल मार्ग पर न चलकर के शॉर्टकट मार्ग पर चलना चाहते हैं। क्षत्रिय युवक संघ के पास में कोई शॉर्टकट नहीं है। जो नियमों का पालन नहीं करता उसे सफलता नहीं मिलती। हमने कितना नियमों का पालन किया इसका अवलोकन आपको करना है। जितना आपने किया है उतना ही आपने पाया है। संस्कार निर्माण की हम बात करते हैं, आप कितने संस्कारी हुए हैं। जिन्होंने बताए गए नियमों का पालन किया है उसी में संस्कार अंकुरित हुए हैं। योग का तीसरा अंग है आसन। आसन का अर्थ है जीवन में स्थिरता आए, अभ्यास के द्वारा। लेकिन जो यम-नियम का पालन नहीं करता और आसन का अभ्यास करता है वह भी पाखण्डी है। उसको आप शारीरिक व्यायाम कह सकते हैं पर वो कोई योग का अंग नहीं हो सकता। हमारे जीवन में उतनी ही स्थिरता आई है, जितना हमने यम का पालन किया है। जितना हमने नियम का पालन किया है, उतना ही आसन की ओर हम बढ़े हैं। आसन के बाद चौथा अंग है प्राणायाम। जब तक हमारे शरीर में प्राण है, तब तक हम जीवित हैं, जिस दिन प्राण नहीं रहेंगे, हम नहीं रह सकेंगे संसार में। एक मिनट में सौलह बार श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। एक दिन में 21 हजार 600 बार हम श्वास लेते हैं। अब हमारी उम्र यदि सौ साल है तो गिनती करें कि हम कितना श्वास लेते हैं। जब हम क्रोध में होते हैं तो श्वास की गति बढ़ जाती है और शान्त अवस्था में बैठते हैं तो श्वास की 16 से घटकर 10 भी हो सकती है, और कम भी हो सकती है। इसीलिए जितने भी प्राणी हैं वो जितने जल्दी-जल्दी श्वास लेते हैं उनकी उम्र कम होती है। तो उस प्राण को हम किस प्रकार से साधें। जो यम का पालन करता है, जो नियम का पालन करता है। उसके आसन लगता है वह प्राण पर नियंत्रण करता है, वह ध्यान कर सकता है।

प्राणायाम के बाद में है प्रत्याहार। यह सब बाहरी है, जो मैंने अब तक बताया। अब अन्दर की ओर चलेंगे, मुड़ जायेंगे। इसी को 'ब्रिज' कहते हैं, पुल कहते हैं योग का। तब धारणा आती है। जिस चीज को हम धारण करना चाहते हैं वह तब कर सकते हैं जब हम अन्तर्मुखी हों। फिर आता है ध्यान। जिसके बारे में कई लोग पूछते हैं। तो धारणा तो प्रयत्न है और ध्यान स्थिति है। ध्यान में करना कुछ नहीं पड़ता। धारणा में करना पड़ता है और जो लोग ध्यान की साधना बताते हैं वो ध्यान की नहीं बता रहे हैं, वो धारणा की बता रहे हैं। गलत ही संदेश दे रहे हैं। फिर है समाधि। जब चिंतन मात्र से स्वत: साध्य, साधना और साधक एक होते हैं। तप करने वाले को भी यह पता नहीं होता है कि मैं तप कर रहा हूँ। इस तरह से क्षत्रिय युवक संघ का मार्ग संपूर्ण योग मार्ग है। आप लोगों ने पिछले नो दिनों में अपने आपको किस प्रकार से साधा है यह

आकलन करें। आप पहले पर ही अटके हुए पड़े हैं, यदि जो बताते हैं कि यह करना चाहिए वो आप नहीं करते हैं और बताते हैं कि यह नहीं करना चाहिए, उसको कर रहे हैं। जो हो रहा है मैं भी देख रहा हूँ आप भी देख रहे हैं। लेकिन फिर भी एक सफल प्रयास हुआ है। जिन लोगों ने यम-नियम का पालन किया है, उतने ही वे आगे बढे हैं। उतना ही शिविर में आने का लक्ष्य पूरा हुआ है। उतने ही वे सिद्ध बनने की ओर बढ़े हैं। साधक हैं और सिद्ध बनना है तो यह प्रक्रिया है। तो क्षत्रिय युवक संघ के शिविर में आकर हमारे अन्दर कितना परिवर्तन आया है यह देखें। दूसरा कोई परिवर्तन ला नहीं सकता। न शिक्षक, न माता, न पिता, न मित्र, न गुरु कोई भी आपको सुधार नहीं सकता है और कोई भी आपको निर्बल भी नहीं बना सकता। वे मार्ग बताते हैं, इशारा करते हैं और उस इंगित को समझ करके हम चल पड़ते हैं। करना हमको है, सारी यात्रा हमको ही करनी है। तो जिसने यह यात्रा की है उसने पाया है।

आज का दिन है, अपने आपका आकलन कर लें और यदि अपने आप में बदलाव करना चाहते हैं तो आप ही को करना है। यहाँ मार्गदर्शन मात्र मिलता है। एक इस प्रकार का वातावरण कृत्रिम बनाकर आपके सामने आपको उसमें से गुजारा जाता है। इसमें आप कितने सफल हुए हैं यह अवश्य देखना चाहिए। इस शिविर में आए हैं। शिविर में आज्ञाओं का पालन किया है। जो लोग सेना में भर्ती हैं और देश की सेवा करना चाहते हैं तो वे देश को कहाँ देखने जाएँ। सेनापति की आज्ञा का पालन ही देश की सेवा है। गुरु की आज्ञा ही अपने अन्तःकरण को टटोल कर आगे बढ़ने का मार्ग है। अन्दर में भरा हुआ है अज्ञान, अन्धकार, उसे हटाने के लिये गुरु इशारा करेगा-यह करना है आपको। आज का दिन शेष है। हम कहते हैं-बूढ़े हो जाते हैं माता-पिता तो एण्डी-बैण्डी बातें करने लगते हैं। तब लोग कहते हैं कि भगवान का नाम लें। हम नहीं समझते, वो नहीं समझते कि भगवान का नाम कैसे लें अब? भगवान का पता ही नहीं है। तब याद करते हैं कि माताजी का लें, हनुमानजी का लें, पाबूजी का लें, भोमिया जी का लें, किस का लें। अभी तक तो यह भी निर्णय नहीं हुआ है। किसी का लें आप। एक साधे, सब सधे, सब साधे सब जाय। कब तक यह निर्णय करेंगे कि हमको क्या करना है? तो कदम बढ़ेंगे कैसे? तो अन्तिम समय में यदि कोई कहता है कि भगवान का नाम लो, नहीं ले सकते। यही उम्र है, अभी ही जड़ें फैलानी है। अब ही भगवान आपके अन्दर प्रवेश करें नहीं तो और कोई प्रवेश कर जाएगा। तब आपके जीवन में किये हुए कुकर्म याद आयेंगे। मरते समय मैंने यह कर दिया, मैंने यह कर दिया। मौत से लोगों की बोली बन्द हो जाती है, लकवा हो जाता है। पड़े हैं, कैसे, भगवान का नाम लें? जो जीवन भर किया है, उसी की याद रहती है। बहुत सारे लोग कहते हैं कि भजन करते हैं तो मन नहीं लगता है। मन कैसे लगेगा? मन नहीं लगता क्योंकि मन कहीं न कहीं लग रहा है। कहाँ लग रहा है, जहाँ मोह है, जहाँ आसक्ति है और मोह और आसक्ति कहाँ हो सकती है? जो दुनिया में हमने देखा है, जिनके साथ हम रहे हैं और हमसे जो घटनाएँ घटी हैं। तो अच्छी तरह से याद कर लें भगवान का नाम लेने के नाम पर पाखण्ड अधिक चल रहा है। लेकिन अभ्यास के द्वारा सब सम्भव है। क्षत्रिय युवक संघ में आकर के जो प्रार्थना करना नहीं सीखता, जो उपासना करना नहीं सीखता, जो अपने आपको बदल नहीं सकता तो उसने क्या पाया? यहाँ के ज्ञान को कोई भी रट सकता है, कोई भी जाकर के भाषण दे सकता है लेकिन प्रभाव उसका पड़ेगा जिसका आचरण बदला है। जो मैंने अष्टांग योग के दो पहले सूत्र बताए हैं उन यम-नियम का जो पालन करता है, जो सत्य का पालन करता है, अहिंसा का पालन करता है, ब्रह्मचर्य का पालन करता है, चोरी नहीं करता है, और आवश्यकता से अधिक संग्रह नहीं करता है उसी का प्रभाव पड़ेगा। जो ऐसा नहीं करते वे पाप को कमाते हैं, भगवान पर भरोसा बिल्कुल नहीं करते हैं तब ध्यान की बात करना बिल्कुल बेमानी है। कोई मतलब नहीं है।

कल कुछ सज्जन आए थे। आप यह सिखाते हैं-यह सिखाते हैं। हम तो भाई इन्सानियत की बात सिखाते हैं, कमाना नहीं सिखाते। कमाना आप लोग सीखाओ।

कमाए बिना काम नहीं चलेगा, कमाने का कोई मना ही नहीं है, खूब कमाइए। संघ तो सूत्र देता है कि देवताओं की तरह से कमाइए और देवताओं की तरह से खर्च कीजिए। राक्षस नहीं बनें। देना सीखें, त्याग करना सीखें। समर्पण सीखें। जो केवल अपने लिये जीता है वो पाप कमाता है। जन्म-जन्म तक वो पीछा करता है। सद्कर्म भी हमारा पीछा करते हैं, कुकर्म भी हमारा पीछा करते हैं। हमने क्या किया है वह जीवन भर हमारा पीछा करेगा और मरने के बाद में भी पीछा करेगा। कमाई करनी है तो सद्कर्म की करें। सुकर्म की करें, प्रयत्न तो सुकर्म का ही करना चाहिए और कुकर्म के लिये कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। क्रोध आया तो थप्पड़ मार देना, इसमें कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। क्रोध आया है लेकिन थप्पड़ नहीं मारूंगा, कोई गाली दे रहा है। लेकिन मैं सुनूंगा। इसके लिये अभ्यास करना पड़ता है। तो यह सारी साधना स्व निर्माण की है। स्वयंसेवक बनना है। घटनायक नहीं बनना है, पथक शिक्षक नहीं बनना है। अपनी सेवा करनी है। जो अपनी सेवा नहीं करता वह कैसे देश की सेवा करेगा? कैसे समाज की सेवा करेगा? तो हम आज के दिन यह आकलन करेंगे और जो-जो भूलें हुई हैं वो किसी को बतानी नहीं है, उसको आज सुधारना है। कि यह पानी पीना है और यह नहीं पीना है। आज वही करना है। समय पर आना है देरी से नहीं आना है। आज यही करना है। नहीं तो एक अंक और जुड़ जाएगा कुकर्म में और वो कुकर्म जीवन भर पीछा नहीं छोड़ेगा। साथ में यह भी कह रहा हूँ कि सुकर्म करेंगे वो भी पीछा नहीं छोड़ेगा। तो हमको किसका पीछा करना सुहाता है, हम किसके साथ रहना चाहते हैं, यह खूब बताया है इन दिनों में, आज केवल अन्तरावलोकन करना है। अपना निरीक्षण करना है, परीक्षण करना है और फिर अपना आचरण बदलना है। आप एक दिन में भी बहुत कुछ कर सकते हैं। भगवान गीता में कहते हैं कि जो मेरी शरण में आता है और वह पापी से भी पापी है, उसका भी मैं कल्याण करता हूँ, उद्धार करता हूँ। आपने यदि कोई कुकर्म कियें हों, आज यदि आप भगवान की शरण में आकर यहाँ कही हुई बातों का पूर्णतया पालन कर लेंगे तो वाल्मिकी की तरह से एक ही दिन में आप महापुरुष बन सकते हैं। यह आज के मंगल प्रभात का मंगल सन्देश है। ***जय संघशक्ति!***

महत्त्वपूर्ण दान

भगवान बुद्ध एक पेड़ के नीचे चबूतरे पर बैठे हुए थे। हर भक्त की भेंट स्वीकार कर रहे थे। तभी एक वृद्धा आई। उसने काँपती आवाज में कहा-''भगवन, मैं बहुत गरीब हूँ। मेरे पास आपको भेंट देने के लिये कुछ भी नहीं है। हाँ, आज एक आम मिला है। मैं इसे आधा खा चुकी थी, तभी पता चला कि तथागत आज दान ग्रहण करेंगे। अत: मैं यह आम आपके चरणों में भेंट करने आई हूँ। कृपा कर इसे स्वीकार करें।''

गौतम बुद्ध ने अपनी अंजुरी (पात्र) में वह आधा आम प्रेम और श्रद्धा से रख लिया, मानो कोई बड़ा रत्न हो। वृद्धा संतुष्ट भाव से लौट गई। वहाँ उपस्थित राजा यह देखकर चकित रह गया। उसे समझ नहीं आया कि भगवान बुद्ध वृद्धा का जूठा आम प्राप्त करने के लिये आसन छोड़कर नीचे तक, हाथ पसारकर क्यों आए? पूछा-''भगवन, इस वृद्धा में और इसकी भेंट में क्या ऐसी विशेषता है?''

बुद्ध मुस्कराकर बोले-''राजन, इस वृद्धा ने अपनी संपूर्ण संचित पूंजी मुझे भेंट कर दी जबकि आप लोगों ने अपनी संपूर्ण सम्पत्ति का केवल एक छोटा भाग ही मुझे भेंट किया है। दान के अहंकार में डूबे हुए बग्घी पर चढ़कर आए हो। वृद्धा के मुख पर कितनी करुणा और कितनी नम्रता थी। युगों-युगों के बाद ऐसा दान मिलता है।''

30 जुलाई, जन्मदिवस पर

पू. नारायणसिंह जी रेड़ा

– श्री पथिक

चूरू जिले की सुजानगढ़ तहसील में स्थित रेड़ा गाँव के श्री हरिसिंह जी के पुत्र थे पू. नारायणसिंहजी। 30 जुलाई सन् 1940 को उनका जन्म हुआ। कुछ बड़े होने पर आपको विद्याध्ययन हेतु बीकानेर भेजा गया। वहीं पर श्री क्षत्रिय युवक संघ की शाखा में जाना प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1950 में मात्र दस वर्ष की आयु में आपने संघ का प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर बीकानेर में ही किया। संघ से सम्पर्क ऐसा बना कि शाखा और शिविरों में लगातार उपस्थिति बनाये रखी। अपने जीवनकाल में कुल 227 शिविर उन्होंने किए। संघ के प्रति भाव प्रगाढ से प्रगाढतर लगातार होता रहा।

अपने जीवन का सर्वेसर्वा पू. तनसिंहजी को मान सन् 1959 में उन्होंने अपना जीवन उनकी सेवा में समर्पित किया। पू. तनसिंहजी के साथ उनका निकट का सान्निध्य पू. तनसिंहजी के देहावसान तक रहा। कौम का दीपक बनकर जीवन भर जलने वाले पू. नारायणसिंह जी पू. तनसिंहजी के जीवनकाल में हनुमान की तरह उनके सच्चे सेवक बन उनके जीवन की कहानी बन गए। माता, पिता, पत्नी व संतान इन सबके ऊपर प्रथम प्राथमिकता पू. तनसिंहजी को देते हुए जीवन उनके सान्निध्य में ही गुजारा। अध्यापक की नौकरी छोड़कर पूज्यश्री के साथ आए क्योंकि उन्होंने यह मान लिया था कि मेरा जीवन कहीं सार्थक जीवन बन सकता है तो पूज्यश्री के साथ रहने से ही बन सकता है।

पू. नारायणसिंह जी ने पू. तनसिंहजी को पहचान लिया था तो पू. तनसिंहजी ने पू. नारायणसिंह जी को पहचान लिया था। हल्दीघाटी उच्च प्रशिक्षण शिविर (1959) में बरसात के कारण पू. तनसिंहजी की सहगीत डायरी भीग गई थी। पू. नारायणसिंह जी ने उस डायरी को मांगा तो पू. तनसिंहजी का उत्तर था-'यह डायरी ही क्या, मैं तो संघ भी तुम्हें देना चाहता हूँ।' यह परस्पर पहचान ही निकटता का आधार बनी और पू. नारायणसिंह जी ने प्रार्थना की-'मुझे भी रख लो न।'

पू. नारायणसिंह जी के लिये पू. तनसिंहजी ने पत्र में लिखा है-'कभी-कभी मैं आश्चर्य करता हूँ कि इस छोटी-सी आत्मा में इतनी अधिक आग और उतनी ही अधिक सहनशीलता, जो न भभकती है और न ठण्डी होती है, कैसे टिकी रहती है?' यह टिप्पणी स्पष्ट करती है कि पू. नारायणसिंह जी कितनी धीर-गंभीर भावना से ओतप्रोत थे। और यह भी स्पष्ट है कि पू. तनसिंहजी ने भी उनको कितनी गहराई तक जाना था।

पू. नारायणसिंह जी बोरून्दा उ.प्र. शिविर (1969) में श्री क्षत्रिय युवक संघ के संघप्रमुख चुने गए। इसके बाद सन् 1974, 1980 व 1985 में पुनः संघप्रमुख चुने गए। लगभग 10 वर्ष तक पू. तनसिंहजी के जीवनकाल में उनके आदेशों के अनुकूल संघ का संचालन किया और सन् 1979 में पू. तनसिंहजी के देहावसान के बाद 1989 तक 10 वर्ष तक, स्वतंत्र रूप से संघ का संचालन किया।

पू. तनसिंहजी के देहावसान के बाद सन् 1980 में उनके जीवन में संपूर्ण योग अंकुरित हुआ जो लगातार पल्लवित, पुष्पित व फलित हुआ। परम्परागत योगमार्ग को व्यावहारिक वैज्ञानिकता के साथ जोड़कर श्री क्षत्रिय युवक संघ को एक नया मोड़ दिया, नया रास्ता बताया जिसका उन्होंने नाम दिया संयोमा (संपूर्ण योग मार्ग)। इस संयोमा ने संघ को इतना मजबूत बनाया कि वज्र का प्रहार भी स्वयं लज्जित हो लौट जाने को विवश हो जाए। इस काल में श्री क्षत्रिय युवक संघ का विस्तार अधिक नहीं हुआ किन्तु घनत्व इतना बढा कि अब जो इस मार्ग पर चल रहे हैं उन पर भगवत कृपा की बरसात ईर्ष्या करने योग्य हो रही है। पू. नारायणसिंह जी ने सबको पुनः आत्मीयता के बंधन में बांधकर जो स्नेह सरिता प्रवाहित की, उनके स्वर्गवास के

बाद भी वही प्रेम-रसधारा संघ धरती पर गंगा बनकर बह रही है। पू. तनसिंहजी को समझकर उनके जीवन सिद्धान्तों को स्वयंसेवकों के जीवन व्यवहार में ढालकर श्री क्षत्रिय युवक संघ को एक परिवार का रूप देने वाले पू. नारायणसिंह जी ने यह सिद्ध कर दिया कि भौगोलिक सीमाओं को तोड़कर गुजरात, राजस्थान और विभिन्न स्थानों के लोग एक पारिवारिक भाव को लेकर संघ कार्य कर सकते हैं, तो एक घर के लोग पारिवारिक प्रेम के सूत्र में बंध कर प्रेमपूर्वक क्यों नहीं रह सकते?

सन् 1980 के बाद एकाएक उनके जीवन में कुण्डलिनी शक्ति का जागरण हुआ। इस कुण्डलिनी शक्ति ने एक बार तो उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को हिला दिया। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक इतने गहरे परिवर्तन हुए कि जीवन वीणा के सभी तार एक साथ झंकृत होकर बज उठे। अब वे अन्तर्मुखी हो गए। वे कहते कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, जो कुछ हो रहा है व स्वत: घट रहा है। मैं तो समुद्र की लहरों में पड़ा तिनका हूँ जिसे लहरें जिधर ले जाना चाहे, जा रहा हूँ। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से उत्तरोत्तर विकट से विकट घाटियों को प्रसन्नतापूर्वक प्रभु का प्रसाद मानकर पार की। वे कहते थे जो कुछ हो रहा है, वह कल्पनातीत व अद्भुत है। अति कष्टदायक होने के साथ-साथ आनन्द-दायक भी इतना है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

उनके अनुसार समर्पण भाव को गम्भीरता से समझने की आवश्यकता है। जीवन के समस्त व्यापार संघ के निमित्त हो जाए, शब्दों में नहीं व्यवहार में, तो उसके जीवन में सुख और शान्ति को आने से कोई नहीं रोक सकता। वे कहते-मैंने कोई उपासना नहीं की, साधारणतया प्रभु का नाम जैसे आप लोग लेते हैं, वैसे ही लिया। अत: मेरे जीवन में यह जो परिवर्तित आया, उसका कारण संघ कार्य ही है। मेरे जीवन में आया परिवर्तन संघ की वैज्ञानिकता तो सिद्ध करता ही है, आवश्यकता है एकनिष्ठ होकर कार्य करने की। पू. तनसिंहजी भी इसीलिए संघ कार्य को उपासना की ही संज्ञा देते थे। पू. नारायणसिंह जी की एकनिष्ठता के कारण ही पूज्य तनसिंहजी ने कहा है- 'शब्दों की सृष्टि से अनेक लोगों ने मुझे भगवान बता डाला होगा, लेकिन व्यवहार में उन्होंने मुझे अपना साथी तक नहीं माना। वे मेरे सुखों और दुखों के सहयोगी नहीं बन पाए। 1959 के बाद मैंने सुख की अनुभूति की क्योंकि मुझे लगा कि इस जीवन में मेरा कम से कम एक साथी तो ऐसा है जिसे मैं केवल अपना कह सकता हूँ।'

प्रभु से प्रार्थना है कि पू. नारायणसिंह जी की तरह संघ के प्रति हमारी एकनिष्ठता को इतना दृढ बनाने में सहयोग करें कि संघ के सुखों और दुखों में हम सच्चे सहयोगी बन जाएँ। तभी संघ हमारी विश्वसनीयता पर गर्व कर सकेगा।

✻

पृष्ठ 5 का शेष

समाचार संक्षेप

नई सरकार में 7 राजपूत मंत्री बनाए गये हैं। सर्वश्री राजनाथसिंह, नरेन्द्रसिंह तोमर और गजेन्द्रसिंह केबीनेट मंत्री बने हैं। सर्वश्री डॉ. जितेन्द्रसिंह व आर.के. सिंह स्वतंत्र प्रभार के साथ राज्य मंत्री बने हैं। सर्वश्री अनुरागसिंह ठाकुर, राव साहेब दानवे पाटिल व जनरल वी.के. सिंह राज्य मंत्री बनाए गए हैं।

श्री गजेन्द्रसिंह सीकर जिले के महरोली गाँव से हैं। श्री क्षत्रिय युवक संघ के स्वयंसेवक गजेन्द्रसिंह पर प्रधानमंत्री ने विश्वास जताकर बहुत महत्त्वपूर्ण विभाग जल शक्ति दिया है जो अत्यन्त चुनौतीपूर्ण विभाग है। जलाभाव से जगह-जगह त्राहि-त्राहि मची रहती है और इच्छा है घर-घर नल द्वारा जल पहुँचाया जाए। नदियों का पाकिस्तान को जाने वाला पानी रोका जाए। जल संरक्षण की व्यवस्था पूरे देश में बनाई जाए। जल से सम्बन्धित हर कार्य की आदर्श व्यवस्था बने। उद्देश्य बहुत हितकारी है पर है बड़ा चुनौतीपूर्ण। प्रत्येक राज्य सरकार का ही नहीं, हर नागरिक का सहयोग आवश्यक है।

✻

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

चौदह वर्ष के वनवास काल में राम व सीता एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे और पास में लक्ष्मण बैठे थे। सीता जी वृक्ष पर चढी बेल (लता) को देख कहती है–''ये बेल (लता) कितनी सौभाग्यशाली है जिसे इस वृक्ष का सहारा मिला है।'' रामजी कहते हैं–''यह वृक्ष कितन सौभाग्यशाली है जिसे बेल (लता) का साथ मिला।'' रामजी लक्ष्मण को कहते हैं–''लक्ष्मण तुम निर्णय करो, कौन सौभाग्यशाली है?'' लक्ष्मण कहते हैं–''ये दोनों ही सौभाग्यशाली हैं जिन्हें एक दूसरे का साथ मिला, पर इनसे ज्यादा तो मैं सौभाग्यशाली हूँ जो इनकी छाया में बैठा हूँ।''

सीता जी रामजी को इंगित करके कहती हैं–''मैं कितनी सौभाग्यशाली हूँ जिन्हें आप जैसा पति मिला है।'' राम सीता जी को इंगित करके कहते हैं–''मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ जिसे आप जैसी पतिव्रता नारी मिली है।'' लक्ष्मण कहते हैं–''मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ जिसे ऐसे भैया और भाभी का सान्निध्य मिला।''

जो भाग्यवान होते हैं उन्हें ऐसा सौभाग्य प्राप्त होता है। ये पूर्व जन्मों की तपस्या का फल है जो प्रारब्ध के रूप में मिलता है। माँसा मोतीकंवर जी को अपने पूर्व जन्मों की तपस्या के कारण ही पूज्य श्री तनसिंहजी जैसा पुत्र रत्न पाने का सौभाग्य मिला और पूज्य श्री तनसिंहजी को माँसा जैसी विभूति की कोख से जन्म मिला तथा हम लोग कितने सौभाग्यशाली हैं जिन्हें पूज्य श्री तनसिंहजी व माँसा मोतीकँवर जी जैसी महान विभूतियों का सान्निध्य मिला है।

अबोध बालक तणेराज के खाने-पीने, खेलने व मौज-मस्ती के दिनों में कुदरती मार ने उन्हें पितृ छाया से वंचित कर ऐसा कहर ढहाया कि सारी परिस्थितियाँ ही बदल गयी। सब कुछ विपरीत हो गया। जमाना बड़ा बेरहमी है, जो अपनायतपन व हितैषिता का दम्भ भरते थे वे समय के पलटवार के साथ बदल गये। कुदरती आफत के समय सभी ने मुँह मोड़ लिया, वे सभी पराये बन बैठे। ऐसे हालात में माँसा के सामने आर्थिक संकट खड़ा हो गया। आर्थिक संकट से पार पाना था। दूसरा बालक तणेराज पढने की उम्र का हो गया था जिसे पढाना भी जरूरी था।

माँसा दूरदर्शी थे। उन्होंने दूरदर्शिता व विवेक से काम लिया। आर्थिक संकट से पार पाने के लिये, माँसा के लिये गाँव रामदेरिया में जाकर अपनी कृषि भूमि पर काश्त करवाना जरूरी हो गया था, साथ ही बालक तणेराज को शिक्षा की ओर अग्रसर करना आवश्यक समझकर, बालक तणेराज को पढने के लिये बाड़मेर ही छोड़ माँसा को गाँव रामदेरिया में जाकर अपनी ढाणी में रहना पड़ा।

जब बालक तणेराज पढने के लिये पाठशाला जाने लगा तो माँसा को लोगों के व्यंग भी सुनने को मिले– ''अब यह पढ-लिखकर बनेगा बड़ा बैरिस्टर।'' कुछ लोग कहते हैं कि–''यह क्या खाक पढेगा, इसमें तो माँग कर खाने की भी योग्यता नहीं है।'' माँसा सब कुछ चुपचाप सुनती रहती। किसी को कुछ नहीं कहती थी। पर माँसा ने मन ही मन में यह ठान लिया था कि इसे पढा-लिखा कर बड़ा आदमी बनाऊँगी और समय गुजरने के साथ एक महान विभूति के रूप में अपने लाडले को प्रतिण्ठित किया। लोगों के उलाहने को झुठलाकर उन्हें बैरिस्टर भी बनाया और लोगों को रोजी-रोटी देने वाला अन्नदाता के रूप में भी उन्हें प्रतिष्ठित कर दिखाया।

पूज्य श्री तनसिंहजी के जीवन वृतान्त पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि उनके जीवन की शुरुआत ही आर्थिक तंगाई व अभावों में हुई। बाड़मेर रहते बालक तणेराज को कष्टों भरी राहों से गुजरना पड़ा। माँसा के गाँव रामदेरिया में रहने से उन्हें हाथ से रोटी बनानी पड़ती

थी जिससे हाथ जल जाया करते थे, चक्की से आटा पीसना पड़ता था जिससे उन नन्हें हाथों में छाले पड़ जाया करते थे। बालक तणेराज का यह विद्याध्ययन का सफर बड़ा ही कष्टप्रद व दर्दनाक था, इसके उपरान्त भी उन्होंने अपना विद्याध्ययन जारी रखा।

बालक तणेराज का बचपन आफतों, कष्टों, अभावों व आर्थिक तंगाई रूपी मकड़ी के जाल के व्यूह चक्र में झूलता रहा यानी घिर गया। उनकी ताकत, उनकी हिम्मत, उनकी माँ थी इसलिये माँसा के संरक्षण व मार्गदर्शन में इस व्यूह चक्र को तोड़ते गये और माँसा की प्रेरणा से आगे बढ़ते गये। माँसा के संरक्षण व मार्गदर्शन में उन्होंने इस कष्ट भरे जीवन को सहज बना डाला इसलिये उन्हें ये कष्ट, कष्ट लगे ही नहीं।

घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। माँसा घर-परिवार का भरण-पोषण अपनी कड़ी मेहनत से ही कर पाते थे। फिर भी माँसा ने यह ठान रखा था कि तणेराज को पढा-लिखा कर बड़ा आदमी बनाऊँगी। माँसा की इस भावना को बालक तणेराज भाँप चुका था, साथ में बालक तणेराज को यह भी पता था कि घर से आगे पढने हेतु कुछ भी सहायता मिलने वाली नहीं है। माँसा की इच्छा को साकार रूप देने के लिये बालक तणेराज ने आगे पढने की ठानी। माँसा का संकल्प ही उनका संकल्प बन गया। उन्होंने कड़ा संकल्प लिया कि खुद कमाई करके, अपनी भुजाओं के बल पढूंगा और पढे। अपने जीवन को आगे बढ़ाने की चाह का संकल्प लेकर शिक्षा की ओर अग्रसर हुए और विधि स्नातक तक की उपाधि अर्जित की। घर की तरफ से उनका उत्साह कम नहीं होने दिया। माँसा ने हिम्मत बढाई और वे आगे बढते गये।

बालक तणेराज के सिर से पितृ छाया नहीं उठती तो उन्हें इन प्रतिकूल परिस्थितियों से नहीं गुजरना पड़ता, पर कुदरत की लीला को कौन समझ सकता है। जीवन में आने वाली परिस्थितियाँ हमारी इच्छानुरूप नहीं हुआ करती हैं इसलिये हर कोई को अप्रिय तथा प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इस कारण कहा गया है कि साधक को सभी परिस्थितियों में धैर्यवान और सहिष्णु होना चाहिए। माँसा ने बालक तणेराज को बाल्यकाल से ही साधक जीवन जीने की ओर अग्रसर किया। इसलिये विपरीत परिस्थितियों में भी वे सदैव कष्ट सहिष्णु व धैर्यवान बने रहे।

माँसा ने जमीनी हकीकत का पूज्य श्री तनसिंहजी को अहसास कराया। जीवन में अभाव व कठिनाइयाँ क्या होती हैं, इसका अहसास उन्हें कराया-क्या नन्हा बालक चक्की से आटा पीसना जानता है? नहीं, पर बालक तणेराज को चक्की से आटा पीसना पड़ा जिससे उनके हाथों में छाले पड़ जाते, हाथों से रोटियाँ बनाते उनके हाथ जल जाया करते थे। माँसा ने इन कठोर संघर्षों से जूझने का उन्हें अहसास कराया। जीवन में श्रम का क्या महत्त्व है, इसका भी उन्हें अहसास कराया। इसमें कुदरत ने भी सहयोग किया। जीवन में अभाव क्या होता है? जीवन में आने वाली कठिनाइयाँ क्या होती हैं? उन कठिनाइयों से पार पाने के लिये संघर्ष करना होता है, तो वह संघर्ष क्या होता है? माँसा ने इनका अहसास कराकर उन्हें संघर्षशील व पुरुषार्थी बना दिया।

शोक से उद्विग्न अर्जुन जब अधीर हो गया तो श्री कृष्ण ने उनका मार्गदर्शन किया और पूज्य श्री जब दुर्दिनों से गुजर रहे थे तब उनकी माताश्री ने उनका मार्गदर्शन किया। पूज्य श्री का बाल्यकाल ही नहीं, पूरा जीवन ही कष्टों भरा संघर्षशील रहा। माँसा ने उन्हें कष्टों भरे बाल्यकाल से गुजार कर उन्हें फौलाद जैसी मजबूती दी जो उनके पूरे जीवन में बरकरार बनी रही। इस फौलाद जैसी मजबूती की वजह से, उनके जीवन में अनेक झंझावत व आँधियाँ आयी पर वे कभी झुके नहीं, तूफान आये पर वे कभी टूटे नहीं, राह पर आगे बढते काँटे चुभे पर वे कभी रुके नहीं, बढते ही गये, बढते ही गये।

वैसे तो संसार की हर माँ अपनी संतान के लिये सौभाग्यशाली ही होती है पर पूज्य श्री बेहद सौभाग्यशाली थे जिन्हें माँसा जैसी दूरदर्शी व विवेकशील माता मिली। पितृ छाया तो कुदरत ने छीनी पर विपरीत परिस्थितियों में रहकर उनमें जीवन यापन करने की क्षमता उनकी माताश्री ने पैदा की। ***(क्रमशः)***

आध्यात्मिक अनुभूतियों की सत्यता

– स्वामी यतीश्वरानन्द

आधुनिक संशय :

जब हम आध्यात्मिक अनुभूति के बारे में सोचते हैं तो यह प्रश्न उठता है : ''क्या ये अनुभूतियाँ सत्य हैं?'' मैं न्यूयार्क के एक पादरी को जानता था। एक दिन जब उसने अपनी कन्या से किसी आध्यात्मिक विषय के बारे में कहा तो उसने अचम्भित होकर पूछा, ''पिताजी, क्या यह सत्य है या आप केवल उपदेश दे रहे हैं?'' हम कई प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूतियों के बारे में सुनते हैं और हमें सदा हैरानी होती है कि क्या ये सत्य हैं?

कुछ ऐसे संशयवादी होते हैं जो सभी बातों को तर्क द्वारा उड़ा देना चाहते हैं। ऐसे यथार्थवादी भी हैं जो यह मानते हैं कि ये सारी अनुभूतियाँ अत्यधिक उत्तेजित स्नायुओं के कारण होती हैं। विलियम जेम्स इनमें से कुछ को *Medical Materialists* या आयुर्वैज्ञानिक भौतिकवादी कहा करते थे। इनमें से एक ने एक महान् साधक के बारे में कहा कि उसे इसलिए दर्शन होते थे क्योंकि उसमें यौन-विकार था; दूसरे की आध्यात्मिक-अनुभूतियाँ हिस्टीरिया रोग के कारण थी। उसके अनुसार केवल एक मानसिक रोगग्रस्त व्यक्ति ही संसार की रीत से अपने को अलग करके चेतना के भिन्न स्तर पर पहुँचना चाहता है।

जब श्रीरामकृष्ण कठोर साधना कर रहे थे तब बहुत से लोग उन्हें मनोविकारग्रस्त समझते थे। अपने अनेक गुरुओं में से एक, भैरवी ब्राह्मणी से मुलाकात होने पर उन्होंने लोगों की उनके सम्बन्ध में मान्यता के बारे में उनसे कहा। इसके उत्तर में ब्राह्मणी-जो स्वयं एक उन्नत साधिका थी-ने कहा,''सुनो, संसार में प्रत्येक व्यक्ति किसी वस्तु के लिये पागल है। अन्तर केवल इतना है कि तुम भगवान के लिये पागल हो। अन्य लोग सांसारिक वस्तुओं के लिये पागल हैं।''

हिस्टीरियाग्रस्त रोगी और एक सच्चे साधक के बीच, जिसने एक नई दृष्टि, एक ''दिव्य-दृष्टि'' प्राप्त की है, बड़ा अन्तर है। प्रोफेसर विलियम जेम्स अपनी पुस्तक *Varieties of Religious Experience* (वेराइटीज ऑफ रिलीजिअस एक्सपीरियन्स), में बताते हैं कि सच्ची धार्मिक अनुभूतियाँ चेतना के जिस स्तर पर हम स्वाभाविक रूप से जीते हैं, उससे गहरे धरातल से पैदा होती हैं। उनका कथन है कि योगाभ्यास के द्वारा अलौकिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त की जा सकती है। योग हमारे चेतन मन का अतिचेतन के साथ संयोग करने में सहायक होता है। योगी स्थूल देह सम्बन्धित जीवन की बाधाओं का अतिक्रमण करना जानता है तथा वह एक ऐसी अवस्था में प्रवेश करता है जिसमें वह परमात्मा का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करता है।

वैज्ञानिकों का धार्मिक आदर्शों के प्रति विरोध घट रहा है। ऐसे आधुनिक वैज्ञानिक हैं जो आध्यात्मिक अनुभूतियों के एक स्तर को स्वीकार करने लगे हैं जिसका अंकन प्रयोगशाला की सामान्य पद्धति से नहीं किया जा सकता। बहुत से वैज्ञानिकों ने अनुभवमूलक विज्ञान की सीमाओं का अनुभव किया है तथा वे इन्द्रियातीत सत्य का ज्ञान प्राप्त करने के उपायों की खोज में लगे हैं। विश्व के महान् अनुभूतिसम्पन्न सन्तों की रचनाओं के प्रति नवीन रुचि पैदा हुई है। विश्व के धर्मों के अनुभूतिसम्पन्न साधकों की अनुभूतियाँ इतनी अधिक प्रामाणिक हैं कि उन्हें आसानी से मनोकल्पना कहकर नकारा नहीं जा सकता।

सदियों से प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों प्रदेशों में अनेक महान ऋषि हो गए हैं। इनमें से कुछ को उच्चतम आध्यात्मिक आलोक प्राप्त हुआ था। परम्परागत धर्म कुछ प्रारम्भिक क्रिया अनुष्ठानों तक ही सीमित रहते हैं। ईसाई धर्म का प्रारम्भिक अनुष्ठान बपतिस्मा है। अब, बपतिस्मा की बहुत-सी व्याख्याएँ हैं। एक सम्प्रदाय की मान्यता है कि जब तक व्यक्ति पानी में पूरा नहीं डूबे तब

तक उसका त्राण नहीं हो सकता। दूसरा सम्प्रदाय मानता है कि पवित्र जल से कपाल पर क्रास का आकार बनाने से व्यक्ति को उतनी ही पवित्रता का बोध हो सकता है। अन्य दूसरे लोग आन्तरिक पवित्रता पर बल देते हैं और बाह्य बपतिस्मा की किञ्चित मात्र आवश्यकता अनुभव नहीं करते। चीन में एक बार एक ईसाई मिशनरी समागम हुआ जिसमें बाप्टिस्ट समुदाय का एक व्यक्ति बोला, उसके बाद मेथोडिस्ट और अन्त में एक अंग्रेज क्वेकर। एक चीनी ने दूसरे से पूछा, ''इनमें से प्रत्येक ईसाई धर्म हमें एक पृथक् सिद्धान्त बता रहा है। क्या तुम इनका अन्तर मुझे समझा सकते हो?'' ''मैं नहीं सोचता कि इनमें कोई अन्तर है'', उसके मित्र ने उत्तर दिया, ''केवल किसी में बहुत सफाई है, दूसरे में कम सफाई और किसी में कोई सफाई नहीं है।''

धर्म के बाह्य लक्षणों के सामान्य भेदों को इतना अधिक महत्त्व देना धर्मान्धता है जिसने एक दूसरे के विरोधी नाना सम्प्रदायों की सृष्टि की है। सम्प्रदायों के बदले हमें सच्चे साधकों का अवलोकन करना चाहिए जिन्होंने साधना द्वारा चरम सत्य का साक्षात्कार किया है तथा उसे अपने जीवन में उतारा है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे :

किसी ने दूध के सम्बन्ध में सुना भर है, किसी ने दूध को देखा है और कुछ ने दूध को पीया है। वह, जिसने उसके बारे में सिर्फ सुना भर है, अज्ञानी है। वह, जिसने उसे देखा है, ज्ञानी है। किन्तु जिसने उसे पीया है, वह विशेष-ज्ञान (विज्ञान) रखता है, उसे उसका सर्वाङ्ग अर्थात् संपूर्ण ज्ञान हुआ है।

''महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?''

एक महाविद्यालयीन छात्र के रूप में नरेन्द्र ने-जो आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द हुआ-ईश्वर में विश्वास खो दिया था। वह अनेक धार्मिक नेताओं के पास गया और उनसे पूछा कि क्या उनमें से किसी ने ईश्वर को देखा है, उनका साक्षात्कार किया है? अन्त में भाग्य उन्हें महान् आधुनिक ऋषि और अवतार श्रीरामकृष्ण के निकट लाया। महाविद्यालय के इस युवा छात्र ने सन्त से सीधा प्रश्न किया। वह था, ''महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?'' क्षणभर भी हिचके बिना तथा सत्य की शक्ति से गूँजते हुए प्रत्येक शब्द के साथ सन्त ने युवक को उत्तर दिया : ''हाँ मैंने उसे देखा है, उसी तरह जिस तरह मैं तुम्हें यहाँ देख रहा हूँ, केवल इससे और अधिक स्पष्टतर रूप में।'' नरेन्द्र के दूसरी बार आगमन पर श्रीरामकृष्ण ने महान् आध्यात्मिक क्षुधा की ज्वाला से व्याकुल और व्यग्र युवक को प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अनुभूति का आस्वादन प्रदान करने का निश्चय किया। श्रीरामकृष्ण के रहस्यमय स्पर्श से शिष्य को तत्काल एक अद्भुत अनुभूति हुई; उसने देखा कि सभी वस्तुओं सहित वह कक्ष चारों ओर घूमता हुआ शून्य में विलीन हो रहा है जिसमें वह स्वयं भी विलीन होने वाला है। ऐसे अनुभव से अनभिज्ञ होने के कारण वह चिल्ला उठा, ''ओह! आप मुझे यह क्या कर रहे हैं, घर पर मेरे माता-पिता हैं।'' श्रीरामकृष्ण मुस्कुराते हुए उसे तत्काल सामान्य चेतना के स्तर पर ले आए। शीघ्र ही नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण के निर्देशानुसार साधना करने लगा और कालान्तर में उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति निर्विकल्प समाधि सहित असंख्य दर्शन और अनुभूतियों का लाभ प्राप्त कर धन्य हुआ था। वर्षों बाद स्वामी विवेकानन्द के रूप में उसने अपने अनुयायियों से कहा था :

जिन्हें आत्मा की अनुभूति या ईश्वर-साक्षात्कार न हुआ हो, उन्हें यह कहने का क्या अधिकार है कि आत्मा या ईश्वर है? यदि ईश्वर है तो उसका साक्षात्कार करना होगा; यदि आत्मा नामक कोई चीज है तो उसकी उपलब्धि करनी होगी। अन्यथा विश्वास न करना ही भला। ढोंगी होने से स्पष्टवादी नास्तिक होना अच्छा है। एक ओर, आज के विद्वान् कहलाने वाले मनुष्यों के मन का भाव यह है कि धर्म, दर्शन और एक परम पुरुष का अनुसंधान-यह सब निष्फल है और दूसरी ओर जो अर्धशिक्षित हैं, उनका मनोभाव ऐसा जान पड़ता है कि धर्म, दर्शन आदि की वास्तव में कोई बुनियाद नहीं;

उनकी इतनी ही उपयोगिता है कि वे संसार के मंगल साधन की बलशाली प्रेरक शक्तियाँ हैं। यदि लोगों का ईश्वर की सत्ता में विश्वास रहेगा तो वे सत् और नीतिपरायण बनेंगे और इसीलिए अच्छे नागरिक होंगे। जिनके ऐसे मनोभाव हैं, इसके लिये उनको दोष हीं दिया जा सकता क्योंकि वे धर्म के सम्बन्ध में जो शिक्षा पाते हैं, वह केवल सारशून्य, अर्थहीन अनन्त शब्द समष्टि पर विश्वास मात्र है। उन लोगों से शब्दों पर विश्वास करते रहने के लिये कहा जाता है; क्या ऐसा कोई कभी कर सकता है? यदि मनुष्य द्वारा यह सम्भव होता तो मानव प्रकृति पर मेरी तिल-मात्र श्रद्धा नहीं रहती। मनुष्य चाहता है सत्य, वह सत्य का स्वयं अनुभव करना चाहता है; और जब वह सत्य की धारणा कर लेता है, सत्य का साक्षात्कार कर लेता है, हृदय के अन्तरतम प्रदेश में उसका अनुभव कर लेता है, वेद कहते हैं, ''तभी उसके सारे सन्देह दूर होते हैं, सारा तमोजाल छिन्न-भिन्न हो जाता है और सारी वक्रता सीधी हो जाती है।'' ''हे अमृत के पुत्रों! हे दिव्य धाम के निवासियों, सुनो-मैंने अज्ञानान्धकार से आलोक में जाने का रास्ता पा लिया है। जो समस्त तप से पार है, उसको जानने पर ही वहाँ जाया जा सकता है-मुक्ति का और कोई दूसरा उपाय नहीं।''

पुस्तकीय ज्ञान पर्याप्त नहीं है :

हम अपनी महान् मानसिक अपवित्रता के कारण सत्य का स्पष्ट अवलोकन नहीं कर पाते। हमें अपने मन के मैल को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। दूसरे लोग केवल आवश्यक सुझाव भर दे सकते हैं। लेकिन हमें तद्नुसार अपने आचरण का परिवर्तन करना चाहिए।

हमें एक मानसिक दूरबीन प्राप्त करनी चाहिए। यह क्षमता हम सभी में प्रसुप्त रूप से विद्यमान रहती है। यह बाहर से नहीं आती और हमारे स्वभाव में जोड़ी नहीं जा सकती। लेकिन वह एक ऐसी वस्तु है जिसकी हमने इतने वर्षों तक उपेक्षा की है। ज्यों-ज्यों हमारा सामान्य मन पवित्र से पवित्रतर होता जाता है, त्यों-त्यों हम उसके पीछे विद्यमान बुद्धि या हृदय नामक एक सूक्ष्म आध्यात्मिक मन का आविष्कार करते हैं। उसके प्रकट होने पर एक नयी दृष्टि खुल जाती है। यह ''दिव्यचक्षु'' है जिसका उल्लेख गीता के ग्यारहवें अध्याय में किया गया है। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ इस ''दिव्यचक्षु'' का विकास है।

हमें कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि हम सभी के पास निर्दोष इन्द्रियाँ हैं तथा इन्द्रियों के माध्यम से हम जो अनुभव करते हैं, वह सत्य और नित्य है। विवेक का प्रथम प्रयोग, ज्ञान का प्रथम प्रकाश हमारे सामने यह प्रकट करता है कि यह संसार निरंतर परिवर्तित हो रहा है तथा हमें कोई स्थायी शान्ति प्रदान नहीं कर सकता। एक रेडियो संयन्त्र असंख्य विद्युत तरंगों को ग्रहण करता है लेकिन हमारी इन्द्रियाँ उनको सीधे अनुभव नहीं कर सकती। इसी तरह हमारा स्थूल मन आत्मा से, ईश्वर से नि:सृत हो रही सूक्ष्म आध्यात्मिक तरंगों को नहीं जान सकता। लेकिन इस मन के पवित्र, अन्तर्मुखी और एकाग्र होने पर हम अपने भीतर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर जगतों का आविष्कार कर पाते हैं।

केवल पठन, वार्तालाप और अच्छी संवेदना मात्र पर्याप्त नहीं है और जो लोग पूरी लगन के साथ वास्तविक साधना करने के लिये तैयार नहीं है, उनके लिये किसी और मार्ग में जाना ही बेहतर है। वे आध्यात्मिक जीवन में कोई प्रगति कभी नहीं कर सकेंगे। लोग इतने कृपण या दरिद्र बुद्धि होते हैं कि थोड़े से उच्च मनोभाव अथवा विचार प्राप्त होते ही सोचने लगते हैं कि उन्होंने कुछ महान् या महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कर ली है। उन्हें वस्तुत: सच्चे आध्यात्मिक जीवन की अथवा वह कहाँ से सचमुच प्रारम्भ होता है, इसकी कोई धारणा नहीं होती।

एक धर्म प्रचारक का एक भाई था जो डाक्टर था। दोनों एक समान दिखते थे। एक दिन एक व्यक्ति ने इनमें से एक को रास्ते में रोक कर उसके अच्छे व्याख्यानों की सफलता पर बधाई दी। उस व्यक्ति ने उत्तर

(शेष पृष्ठ 30 पर)

स्वाधीनता का दीवाना : मेंदिनीराय परिहार

– गोपालसिंह राठौड़

इस देश का इतिहास जिसे राजपूतों की वीरता एवं शौर्यता, त्याग और बलिदान के साथ ही देशभक्ति और राष्ट्रहित के लिये सब कुछ समर्पण कर देने की भावना का इतिहास कहा जा सकता है, यह इतिहास किसी एक वंश, किसी एक क्षेत्र या किसी एक भाग का न होकर देश के कोने-कोने में फैले हुए विभिन्न वंशों के राजपूतों का इतिहास है। समय, काल और परिस्थिति के अनुसार हर वंश के राजपूत ने अपना सर्वस्व बलिदान कर इतिहास के पृष्ठों में स्वर्ण पृष्ठ जोड़ा है।

राजपूतों के इतिहास को गौरवान्वित करने वाला क्षेत्र राजस्थान जहाँ सिसोदिया, राठौड़, भाटी, कछवाहा राजपूतों के साथ ही चौहान, झाला, सोलंकी आदि राजपूत वंशों और उनकी शाखाओं के बारे में तो जनसाधारण भी जानते हैं किन्तु प्रतिहार या ''परिहार'' वंश के राजपूतों के बारे में बहुत कम, जन साधारण एवं राजपूत समाज में भी पढे-लिखे लोगों के अलावा बहुत कम लोगों को जानकारी है। मेवाड़, हाड़ौती, वागड़, मालवा, शेखावाटी और तंवरवाटी में प्रतिहार या परिहार राजपूतों का शायद ही कोई प्रतिष्ठित ठिकाना हो किन्तु इतिहास की दृष्टि से देखें तो छठी से 10वीं शताब्दी या मध्यकाल में परिहार वंश का बहुत बड़ा साम्राज्य इस देश में रहा है। कभी ग्वालियर (म.प्र.) तथा मंडोर (मारवाड़) परिहार राजपूतों के शक्ति के केन्द्र थे।

राव जयचंद जी राठौड़ के पोते राव सीहाजी राठौड़ बदायूं (उ.प्र.) छोड़कर गुजरात होते हुए सर्वप्रथम जब राठौड़ राजपूतों के साथ पाली (मारवाड़) पहुँचे तब वहाँ परिहार वंश के राजपूतों का ही शासन था और ''मंडोर'' उनकी राजधानी थी। राव सीहा के वंशज राव चूंडा जी चामुण्डा माँ के अनन्य भक्त थे। देवी के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। कहते हैं-स्वप्न में देवी ने दर्शन देकर कहा कि ''इन्दा'' (परिहार राजपूतों की शाखा) तुम्हें बेटी दे रहे हैं। उसे स्वीकार कर ले दहेज में मंडोर ले ले। यहाँ तेरी जयकार होगी।'' फलतः चूंडा जी ने 'इन्दा' राजपूतों के यहाँ 'बालेसर' में विवाह किया तथा दहेज में मंडोर प्राप्त किया जिसका साक्षी यह सोरठा है –

थिर चूण्डा ने थपे, दूसरा मंडोवर दियो,
तुरकां री जड़ तोड़, काम जोरावर कियो
चूण्डा चंवरी बाढ़ दी, मंडोवर दायजे,
इन्दा तणो उपकार, कमधज कदे न बीसरे

इस प्रकार परिहार राजपूतों से दहेज में मंडोर प्राप्त कर 'राठौड़ों' ने मारवाड़ में राठौड़ राज्य की स्थापना की। राव चूण्डा के वंशज राव जोधा ने मेहरानगढ़ का निर्माण करवाया और मारवाड़ की मातेश्वरी चामुण्डा का मंदिर गढ़ में निर्मित करवाकर 1460 में मेहरानगढ़ से माँ चामुण्डा की मूर्ति मेहरानगढ़ में प्रतिष्ठित करवाई। राव चूण्डा के वंशज राव जोधा ने जोधपुर रियासत की स्थापना की थी।

15वीं शताब्दी में मुगल बादशाह बाबर और राजपूतों के सिरमौर महाराणा सांगा के समकालीन परिहार वंश में एक ऐसा वीर पुरुष हुआ जिसकी वीरता और शौर्यता, त्याग और बलिदान को इतिहास में बहुत कम करके आंका गया या जनसाधारण को उस वीर के बारे में बहुत कम जानकारी हुई है किन्तु यह सत्य है कि उनकी वीरता, साहस, स्वतंत्रता और स्वाभिमान ने परिहार वंश को गौरवान्वित किया है। शायद बाबर और सांगा की लोकप्रियता में उस वीर की लोकप्रियता खो गई? इतिहास के उस पृष्ठ को जनसाधारण के बीच उजागर करने का ''हमारे गौरव'' का यह प्रयास शायद आपको अच्छा लगे। हमारे वह नायक थे ''वीर शिरोमणि चंदेरी (म.प्र.) के मेदिनीराय परिहार।''

स्वतंत्रता जीवन की स्वाभाविक वृति है, स्वतंत्रता की चाह अंग्रेजी साम्राज्यवाद के दिनों में आजादी की लड़ाई के दौरान उपजी है, ऐसा नहीं है। स्वतंत्रता की तड़प का जो अनूठा उदाहरण आज से 485 वर्ष पूर्व

चंदेरी के दुर्ग में मेदिनीराय परिहार ने दिया वह आज भी तड़पा देता है। वर्तमान चंदेरी को प्रतिहार वंशी राजा कीर्तिपाल ने बसाया था। राजा कीर्तिपाल महमूद गजनवी का समकालीन था। फिरोजशाह तुगलक और सिकंदर लोदी के आक्रमणों के बावजूद सन् 1438 से 1520 तक चंदेरी पर मालवा के सुल्तानों का आधिपत्य रहा। सन् 1520 में मेदिनीराय की बढ़ती शक्ति से आतंकित मालवा के सुल्तान ने उनको चंदेरी से बर्खास्त कर दिया तो मेदिनीराय चित्तौड़ महाराणा सांगा के पास चले गये। महाराणा सांगा और मेदिनीराय ने मिलकर मालवा पर आक्रमण किया। भीषण युद्ध में 20 हजार सैनिक मारे गये। जिनमें मेदिनीराय का पुत्र भी मारा गया। महाराणा ने सुल्तान को कैद कर लिया। संधि के बाद चंदेरी को स्वतंत्र घोषित कर मेदिनीराय को वहाँ का शासक बनाया गया। इन्होंने अल्पकाल में चंदेरी को मध्यभारत का प्रमुख शक्ति केन्द्र बना दिया।

पानीपत की प्रथम लड़ाई (सन् 1526) में जीतकर बाबर दिल्ली पर काबिज हुआ। बाद में जब महाराणा सांगा और बाबर में खानवा का युद्ध हुआ इसमें मेदिनीराय परिहार 5 हजार राजपूतों के साथ विदेशियों से लड़ने आये। इस युद्ध में महाराणा सांगा की पराजय हुई। आहत मेदिनीराय चंदेरी लौट आये किन्तु उन्होंने साहस नहीं छोड़ा। एक ओर राजपूत शक्ति मेदिनीराय को केन्द्र बनाकर एकत्र होने लगी तो दूसरी ओर बाबर जान गया कि भारत में पैर जमाने के लिये चंदेरी को जीतना आवश्यक है किन्तु बाबर सीधे ही मेदिनीराय से टकराने की बजाए अन्तिम क्षण तक संधि के लिये प्रयत्नशील रहा दूसरी ओर यह जानते हुए भी कि उनका शत्रु शक्ति एवं क्षमता में कई गुना अधिक है मेदिनीराय स्वतंत्र रहने की इच्छाशक्ति लिये हुए अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। उन्होंने न तो बाबर से संधि की और न उसकी अधीनता स्वीकार की। बाबर ने मेदिनीराय को राजी करने और विश्वास में लेने के उद्देश्य से अराईश खाँ को शेख सून के साथ भेजा। क्योंकि अराईश खाँ और मेदिनीराय मित्र थे लेकिन अखण्ड स्वाधीनता हेतु आत्मोत्सर्ग को सन्नद्ध मेदिनीराय विदेशी के सम्मुख सिर कटाने को तैयार थे लेकिन झुकाने को नहीं।

जब बाबर सभी प्रयत्न करके थक गया और परिहार वंश के शेर मेदिनीराय ने न तो बाबर की अधीनता स्वीकार की, न संधि की। तब 28 जून, 1528 को बाबर ने चंदेरी पर आक्रमण कर दिया। भीषण युद्ध हुआ, राजपूत मर्दों ने केसरिया धारण किया और महिलाओं ने जौहर किया। इतिहास लेखक फरिश्ता ने मरने वाले राजपूतों की संख्या 5 से 6 हजार अनुमानित की है। फरिश्ता के अनुसार ''सभी प्रतिष्ठित राजपूतों ने अपना परिवार मेदिनीराय के महल में पहुँचा दिया था। जौहर करने वाली स्त्रियों, बच्चों, सेवकों इन सब मरने वालों का एक ही कसूर था कि वे अपनी स्वतंत्रता के सम्मुख हर वस्तु को तुच्छ समझते थे। इस युद्ध में मेदिनीराय वीरगति को प्राप्त हुए। जहाँ उन्होंने अपनी मातृभूमि के लिये बलिदान दिया उस स्थान को आज खूनी दरवाजा कहते हैं। हजारों राजपूत रमणियों ने महारानी मणी माता के नेतृत्व में जौहर किया था। इसे जौहर तालाब का रूप दे दिया गया है। जिसके किनारे ग्वालियर राज्य की ओर से जौहर स्मारक बनवाया गया है। जिसके मध्य में शिलापट्ट पर जौहर, युद्ध तथा स्वर्ग में अभ्यर्थना का दृश्य उत्कीर्ण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् 1520 से 1528 के मात्र 8 वर्ष के अपने शासनकाल में मेदिनीराय परिहार एक शक्तिपुंज बनकर उभरे। इतने अल्प समय में उन्होंने राजपूत शक्ति एकत्रित की और महाराणा सांगा के बाद राजपूतों के शक्ति केन्द्र बने। खानवा युद्ध के बाद बाबर की शक्ति का अहसास होने के बाद भी न तो उसकी अधीनता स्वीकार की, न उससे संधि की। यह उनकी उच्च कोटि के स्वाभिमान और देशक्ति को स्पष्ट करता है। अंत में लड़कर मरे और राजपूती परम्परा का निर्वाह किया। निश्चय ही उनका आचरण राजपूत जाति

(शेष पृष्ठ 30 पर)

विचार-सरिता

(पञ्चचत्वारिंशत लहरी)

– विचारक

विचार करें कि परमात्मा ने हमको दो हाथ दिए, लेकिन दो होते हुए भी उनसे काम एक सा ही होता है। दो पाँव दिए पर काम दोनों का एक ही है। दो नेत्र दिए पर देखते एक जैसा ही हैं। कान दो दिये पर दो होते हुए भी एक जैसा ही सुनते हैं। नासिका छिद्र दो दिए पर सुगन्ध-दुर्गन्ध दोनों से एक सी ही आती है। यह सब होते हुए जिह्वा एक दी परन्तु इस एक ही करण के कार्य दो हैं। यह ज्ञानेन्द्रि भी है और कर्मेन्द्रि भी है। भोजन के षट्रस का स्वाद चखने के अतिरिक्त बोलने का कार्य भी जिह्वा से ही होता है। शब्दों के समूह द्वारा बनाए गए वाक्यों का उच्चारण हमारी वाक इन्द्रि ही करती है, इसलिए यह ज्ञानेन्द्रि व कर्मेन्द्रि दोनों हैं।

सृष्टि का अनादि अक्षर ॐ (ओइम्) है और उससे ही समस्त अक्षरों की उत्पत्ति कही गई है। उस प्रणव अक्षर ॐ के अतिरिक्त समस्त भाषाओं का श्रवण जिह्वा द्वारा उच्चरित वाक्यों का हो रहा है। जिह्वा द्वारा उद्घोषित शब्द भी दो प्रकार के होते हैं। 1. जो सत्य, मृदु और हित भरे शब्द होते हैं वे प्रेम का सृजन करते हैं और 2. जो असत्य, कटु व अहित से ओतप्रोत शब्द हैं उनसे द्वेष और पीड़ा पैदा होती है। व्यक्ति और व्यक्ति के बीच में सौहार्द पैदा करने का माध्यम यह जिह्वा ही है और द्वेषता जब कभी पैदा हुई है तो कटु वचनों द्वारा ही हुई है। आपसी झगड़ों का सबसे बड़ा कारण हमारे कटु वचन ही होते हैं। तलवार का घाव तो भर सकता है पर वाणी का घाव इतना गहरा होता है कि आपसी कलह और युद्ध जैसी विभीषिका पैदा कर देता है। द्रोपदी द्वारा दुर्योधन को ''अंधों के पुत्र अंधे ही होते हैं'' यह कटु वचन कहने का परिणाम ही महाभारत का युद्ध है। हमारे जीवन में और हमारे आसपास के परिवारों में भी हम ध्यानपूर्वक देखेंगे तो पाएँगे कि अलगाव और दुराव जो हुआ है उसके पीछे कारण कोई न कोई शब्द ही है जो हमें इतना आघात पहुँचा गया है कि जिसके कारण भाई-भाई में वैर का बीजारोपण हो गया और परिणामस्वरूप तलवारें या बन्दूकें चल पड़ती हैं।

कौनसी बात किसके और कब जीवन में परिवर्तन ला देती है यह भी उस बोली गई वाणी का ही असर होता है। वेदों में एक लाख श्लोक लिखे गए हैं पर सभी वाक्य ब्रह्म-वाक्य नहीं हैं। उनमें केवल चार वाक्य ऐसे हैं जो महावाक्य के नाम से जाने जाते हैं। जीवन में परिवर्तन लाकर जीवन से परिचय करा देने वाले ये चार ही महावाक्य हैं जो जीव व ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हैं। शेष सभी तो अवांतर वाक्य कहलाते हैं। अवांतर का अर्थ होता है जो जीव व ब्रह्म के सत् स्वरूप का प्रतिपादन तो करते हैं पर दोनों में अन्तर होने का उद्घोष करते हैं।

करोड़ों-करोड़ों वाक्य हमने आज तक श्रवण किये पर कोई एक वाक्य जरूर ऐसा हमारे श्रवण-द्वार से हृदय-देश में उतरा होगा जिसने जीवन में त्वरा पैदा की और जीवन को बदल के रख दिया। चार वेद, छः शास्त्र, अट्ठारह पुराण, गीता, भागवत, रामायण, कुरान, बाईबिल आदि सद्ग्रन्थों के पढ़ने से जीवन में परिवर्तन आ जाए, यह आवश्यक नहीं। परन्तु तुलसीदास जैसे पत्नी-प्रेमी के जीवन को उसकी पत्नी रत्नावली ने उसके वासनामय प्रेम को ईश्वरीय प्रेम में एक ही वाक्य से बदल दिया। पत्नी की उस सच्ची और हितभरी वाणी ने अमावस्या की घनघोर काली रात में भी तुलसीदासके जीवन में आलोक की किरण जगा दी और तुलसी जीवन आलोक से भर गया। ***तुलसी-तुलसी क्या करो, तुलसी वन की घास। कृपा भई रघुनाथ की, तब हो गए तुलसीदास।।***

भर्तृहरि के जीवन में जो वैराग्य जगा, उसका कारण भी उनकी सबसे प्रिय पटरानी पिंगला ही थी।

गोपीचंद ने सन्यास लिया उसके पीछे भी कारणस्वरूपा उनकी माताश्री थी। इस तरह अनेकों ऐसे उदाहरण हैं जिनके जीवन में जो बुद्धत्व जगा है उसके पीछे या तो कोई वाणी का तीर है या कोई मूक घटना ऐसी घटी जिसे देखकर भी जीवन बदल जाता है। जब सुनने वाले का हृदय द्रवित हो और सुनाने वाले की बात में सच्चाई हो तो जीवन में क्रांति का घटित होना तत्काल हो जाता है। उसे उस बात को बार-बार सुनाने की आवश्यकता नहीं रहती, एक बार सुनाई गई बात ही जीवन में परिवर्तन ला देती है। यदि हम जीवन की बेहोशी को तोड़कर होश में आ जाएँ तो पेड़ से गिरने वाला पीला पत्ता भी नश्वर संसार की गाथा कह जाता है और सुनने व देखने वाले के लिये पेड़ का सूखा पत्ता भी महावाक्य बन जाता है।

भगवान बुद्ध का बाल्यकाल का नाम सिद्धार्थ था। बाद में लालन-पालन मौसी गौतमी ने किया, इसलिए गौतम कहलाए। राजकुमार गौतम ने किसी गुरु से उपदेश नहीं लिया था। गौतम ने कभी सतसंग भी नहीं सुनी थी और न कभी वेद की ऋचाएँ पढ़ाई गई। गौतम के जीवन में जो क्रांति आई उसका कारण कोई जीवित प्राणी भी नहीं था। गौतम को होश दिलाने वाला तो एक मुर्दा व्यक्ति था। राजकुमार अपने रथ पर आरूढ़ होकर नगर-दर्शन को जा रहा था। रास्ते में कुछ लोग एक मृतक शरीर को बांधकर श्मशान की ओर जाते हुए मिले। गौतम ने रथ को रुकवाया और सारथी से पूछा कि इस आदमी का कसूर क्या है? जिसे इस तरह बांधकर ले जाया जा रहा है। सारथी ने कहा-मालिक! यह आदमी अब जिन्दा नहीं रहा, वह मृत्यु को प्राप्त हो गया है और अब इसे जलाकर राख कर दिया जाएगा। राजकुमार गौतम ने पल भर विचार किया कि यह मृत्यु क्या होती है? फिर सारथी से कहा कि मैं तो राजकुमार हूँ। मुझे तो मरना नहीं पड़ेगा? तब सारथी ने कहा-हुजूर! जो पैदा होता है उसे एक दिन मरना ही पड़ता है। चाहे वह राजा हो या भिखारी। अमीर हो या गरीब। सबका अंत तो ऐसा ही होता है।

बस उस मृत शरीर की मूकवाणी ने ही गौतम के जीवन में क्रान्ति ला दी। वहीं से रथ को महल की ओर मोड़ा और रात्रि के मध्य प्रहर में अप्सरा तुल्य पत्नी व सुकुमार पुत्र को सोते हुए छोड़कर राजधानी से निकल पड़े। मृत्यु क्या है? मृत्यु किसकी होती है? अमृत कहाँ है जो मृत्यु को जीत सके? बस इन तीन प्रश्नों ने गौतम के जीवन को बदल डाला। महलों का वैभव, दास-दासियों की लम्बी कतार व राजपुत्र का अहंकार उन्हें बाँध न सका और वे निकल पड़े अमृत की खोज में। जंगल में निर्जन स्थान में एक वृक्ष के नीचे इसी खोज में बैठ गए कि मृत्यु क्या होती है? और जीवन क्या होता है? इसी खोज की साधना में ध्यानस्थ छः माह तक उसी मुद्रा में निराहार बैठे रहे। छः माह बाद अगले ही दिन सूर्य की प्रथम किरण के साथ भीतर एक प्रकाश पुञ्ज उठा और एक ऐसे दैदीप्यमान प्रकाश की अनुभूति हुई जिसके सामने करोड़ों सूर्यों का प्रकाश भी फीका पड़ जाए। सात दिवस तक वे उसी अमृत कुण्ड में तैरते रहे जो भीतर में मिला। फिर जब उठे तो वे अब पहले वाले गौतम नहीं थे। अब वे भगवान बुद्ध होकर चले। क्योंकि उनका बुद्धत्व जाग चुका था।

जीवनभर शास्त्रों का अध्ययन करने से या गीता को कण्ठस्थ करने से वह अनुभूति नहीं मिलती जो कोई एक घटना चाहे वह किसी भी व्यक्ति के कारण घटित हुई हो, वह घटना या शब्द ही व्यक्ति में क्रांति का कारण बन जाती है। हम साधाकों को भी हर समय होश में रहना चाहिये। न जाने जीवन की कौनसी घटना, कौनसा वाक्य हमारे लिये महावाक्य बनकर जीवन में जाग्रति पैदा कर दे। ऐसे सजग साधकों के चरणों में वन्दन जो हर पल प्रकृति में घटित होने वाली घटना का सन्देश सुनने को तत्पर रहते हैं।

वाक् संयम विश्वमैत्री की पहली सीढी है। - **जयशंकर प्रसाद**

लाड़-प्यार ही नहीं थोड़ी फटकार भी जरूरी

– श्री मौर्य

शिशु डॉक्टरों और मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि 5-6 वर्ष की आयु में बच्चे वस्तुओं और घटनाओं के बारे में जानने के लिये जितने अधिक जिज्ञासु होते हैं, जितना सीखते-समझते हैं, उतना जीवन भर नहीं सीख पाते। इस सच्चाई को सामने रखकर माता-पिता को हमेशा सजग रहना चाहिए कि बच्चे अनजाने में क्या सीख रहे हैं और हम उन्हें क्या सिखा रहे हैं? उनके द्वारा पूछे गये प्रश्नों का आप सही उत्तर दे रहे हैं या फुसलाने, बहलाने के लिये झूठ बोल रहे हैं? आप जो उत्तर देंगे, बच्चा वही सीखेगा। वे अच्छी-बुरी, सत्य-असत्य दोनों प्रकार की बातें बड़ी जल्दी ग्रहण करते हैं। बच्चों को बिगाड़ने में प्राय: माताओं की बहुत बड़ी भूमिका होती है, चाहे वे अशिक्षित हों या शिक्षित, विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

प्राय: देखा जाता है कि बच्चे बाल्यावस्था और किशोरावस्था में जो भूलें, गलतियाँ, शैतानियाँ करते रहते हैं, माता-पिता उसकी अनदेखी करते हैं। उनका बातचीत और व्यवहार कितना ही कटु, अप्रिय, अशिष्ट और उदण्डतापूर्ण हो, कितनी ही बुरी हरकतें करते हों, कितना ही झूठ बोलकर तथ्य को छिपाते हों, माता-पिता यह कहकर हमेशा छूट देते रहते हैं या उस पर पर्दा डाल देते हैं कि अभी तो वह बालक है, बचपन से उन्हें कुछ बताने, सिखाने और संस्कार देने की आवश्यकता नहीं है। बड़े होने पर वे अपने आप सुधर जाएँगे, अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित का बोध हो जाएगा। यह धारणा सौ फीसदी गलत है। यह अबोध बच्चों के साथ माता-पिता का अपराध है।

वास्तव में इस धारणा का जन्म अत्यधिक लाड़-प्यार और ममत्व के कारण होता है। माता-पिता बच्चों के प्यार में इतने अंधे हो जाते हैं कि वे कोई अंकुश नहीं लगाते और न उचित-अनुचित के बारे में समझाइश देते हैं। परिणामस्वरूप लिफ्ट पाकर आगे चलकर बच्चे बिगड़ जाते हैं। सही बात यह है कि अच्छे कार्यों के लिये बच्चों की प्रशंसा और प्रोत्साहन करना और गलतियों के लिये मीठी डाट-फटकार देना चाहिए। अत्यधिक छूट और प्यार, अत्यधिक फटकार दोनों ही विष का कार्य करते हैं। अत: आवश्यकतानुसार प्यार और फटकार दोनों का उचित ढंग से उचित समय पर उपयोग करना चाहिए और न ही बच्चों की जिद के आगे किसी अनुचित माँग के लिये हमेशा समर्पण करना चाहिए। बहुत सारी बातें बच्चे अपने माता-पिता के आचरण और क्रिया-कलापों को देखकर स्वत: ही सीखते हैं, वैसी ही नकल करने का अभ्यास करते हैं, परन्तु माता-पिता को इसका पता नहीं होता। बच्चे तो अबोध होते हैं, वे कुछ अच्छा-बुरा नहीं जानते। अत: माता-पिता को अपने स्वयं के आचरण और क्रियाकलापों के बारे में हमेशा सावधान रहना चाहिए, अन्यथा बच्चे गलत बातें आप से सीखकर एक दिन आप पर ही प्रहार करेंगे।

जो गुण-संस्कार और आदर्श आप अपने बच्चों में देखना चाहते हैं, पहले आप स्वयं वैसा बनिये, उन आदर्शों को अपने जीवन में उतारकर उदाहरण प्रस्तुत कीजिये। बचपन से ही बच्चों को सही दिशा में मोड़ने-प्रशिक्षित करने की आवश्यकता होती है। यदि युवा होने पर उन्हें कुछ सीखाने-समझाने की कोशिश करेंगे, तो वे सीखने के बजाय माता-पिता को ही सबक सिखाने-उपदेश देने की कोशिश करेंगे। हर बात पर पलट-पलट कर सवाल-जवाब करेंगे, क्योंकि बचपन में बोये गये कुसंस्कारों का बीज अब बड़ा होकर वृक्ष बन चुका है। उसका अहंकार जाग्रत हो चुका है। अब मोटी डालियों को झुकाया नहीं जा सकता, उनमें विनम्रता और शिष्टता नहीं आ सकती। यदि जबरदस्ती उसे झुकाने की कोशिश करेंगे, तो वह डाली टूट जाएगी। अत: प्रारम्भ से ही उन्हें रोज टायलेट जाने, ब्रश करने, नहाने-धोने, खाने-पीने, चलने-फिरने, उठने-बैठने, खेलने-कूदने, सोने-जगने, पढ़ने-लिखने, मीठी वाणी

बोलने, सही ढंग से बातचीत और व्यवहार करने, सत्य बोलने, चोरी न करने, धन, समय और वस्तुओं का उचित उपयोग करने आदि तत्वों के बारे में सही तरीका सिखाया जाना चाहिए।

व्यवहारिक रूप से अनेक परिवारों में देखा जाता है कि बच्चों के अवांछित क्रियाकलापों पर जब पिता समझाने या अंकुश लगाने की कोशिश करता है, तो माताएँ सामने आकर बच्चों का पक्ष लेती है, उनका बचाव करती हैं। वे हमेशा छूट या क्षमा या सुविधा दिये जाने के पक्ष में होती हैं, क्योंकि माँ का दिल पिता की अपेक्षा बहुत उदार होता है। दूसरी ओर जब माँ (भूले-भटके) कभी अंकुश लगाने की कोशिश करती है, तो कईबार पिता इसका विरोध करता है। माता-पिता दोनों की विरोधी मानसिकता यह सिद्ध करती है कि बच्चों के प्रति दोनों के विचार और सिद्धान्त अलग-अलग हैं, दोनों में नहीं पटती। ***''ध्यान रखिये पति-पत्नी में आपस में न पटना, सामंजस्य न होना, यह बच्चों के संस्कार बिगाड़ने के लिये काफी हैं।''*** ज्यादातर घरों में माता-पिता के इस व्यवहार के कारण ही बच्चे बहुत अशिष्ट, उदण्ड और अवज्ञाकारी हो जाते हैं। दोनों में से जो व्यक्ति जायज-नाजायज सबसे अधिक छूट और आजादी बच्चों को देता है, उनकी हर फरमाइश पूरी करता है, बच्चे उससे ही प्रेम करते हैं, उसी के प्रति उनकी निष्ठा होती है, उसी को वे अपना हितैषी समझते हैं और इसके विपरीत जो उनकी स्वच्छंदता और माँग पर अंकुश लगाने का प्रयास करता है, उससे बच्चे नफरत करने लगते हैं। यह बात माता-पिता दोनों को समझ में आनी चाहिए।

यही कारण है कि माता-पिता द्वारा दी गई अधिक छूट या उदासीनता का लाभ उठाकर धीरे-धीरे बच्चे छिप-छिपकर दोस्तों के साथ धूम्रपान करने लगते हैं, पान-तम्बाकू, गुटखा खाने के आदी हो जाते हैं, शराब या अन्य नशीली दवाइयाँ खाने लगते हैं। इतना ही नहीं एक दिन अपराधिक तत्वों की गैंग में शामिल हो जाते हैं, फिर उनको कंट्रोल करना बहुत मुश्किल हो जाता है। नाजायज छूट या सुविधा देना भले ही बच्चों के भविष्य के लिये खतरनाक साबित हो और अंकुश लगाना भले ही उनके भावी जीवन के लिये लाभकारी और अच्छा हो, किन्तु अबोध और अज्ञानी बच्चे प्राय: छूट, क्षमा और सुविधा ही अधिक पसंद करते हैं। छूट और क्षमा का उपयोग कब, कहाँ, कितनी बार किया जाये, इस पर माता-पिता को बहुत सावधानी से और गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए, कम से कम बच्चों के भविष्य की खातिर। आप दिन भर टी.वी. देखने की छूट देते हैं या खेलने-कूदने को या नाचने-गाने को या पिकनिक-पार्टियाँ मनाने को या रेस्टोरेंट में रोज भोजन करके पैसा और स्वास्थ्य बर्बाद करने को या फास्ट-फूड, पिजा-बर्गर खाने को या शॉपिंग को या दोस्तों के साथ गप-शप करने की छूट देते हैं अथवा पढ़ने-लिखने की ओर ज्यादा ध्यान देते हैं। जैसी छूट मिलेगी-वैसी आदत बनेगी। दूसरी बात यह है कि यदि माता-पिता बच्चों के सामने स्वयं ही आपस में हमेशा झगड़ते रहते हैं, एक मत-एक विचारधारा के नहीं हैं, आपस में असहयोग और मतभेद रहता है, तो निश्चित मानिये बच्चे कभी अच्छे नहीं बन सकते। ध्यान रखिये यदि किन्हीं मुद्दों पर आपस में गंभीर मतभेद हैं तो कम से कम बच्चों के सामने बहस या लड़ाई-झगड़ा कदापि प्रकट न होने दें। उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि अत्यधिक छूट देना या आपस में सामंजस्य न होना बच्चों के भविष्य के लिये बहुत खतरनाक हो सकता है। अत: बचपन को ***''बचपन''*** मानकर बच्चों के संस्कार की उपेक्षा न करें।

लाड-प्यार में बहुत दोष होते हैं और ताड़ना (दण्ड) में बहुत से गुण। अतएव पुत्र और शिष्य को दण्ड देना चाहिए, बहुत लाड-प्यार नहीं करना चाहिए।

- चाणक्य

क्षत्रिय की कर्तव्यनिष्ठा

– नखतसिंह गौरड़िया

ठा. रामसिंह भाटी जैसलमेर के पाँच पुत्र थे, जिनके लिये दोहा प्रसिद्ध है –

कर्णोती कुन्ता जैसी जाया पाण्डव पाँच।
अखो, तेजो, उदलो, दुर्जन न कनेश।।

अपनी वीरता और कीर्ति के लिये ये पाँचों भाई पाण्डव कहलाते थे। इनकी प्रसिद्धि से ईर्षा करने वालों को जलन होती थी और चापलूस लोग महारावल जैसलमेर के कान इनके विरुद्ध भरते रहते थे। परिणामस्वरूप इन पाँचों को साथ न रहने देने के उद्देश्य से पाँच दूरस्थ स्थानों पर अलग–अलग इनको नियुक्त किया गया ताकि मिलकर शासन या राजकाज में हस्तक्षेप न कर सकें।

रामसिंहजी के एक पुत्र तेजमालजी एक दिन अपने ईष्ट देवता की पूजा कर शस्त्र पूजा कर रहे थे, उसी वक्त एक संदेशवाहक चारणी माँ का संदेश लेकर आया। संदेश था–

उड़ पंछीड़ा जाए तेजल ना ऐयां कए।
रण माँ मारया रतनू सार उणा री लए।।

संदेशवाहक ने पूरी बात बताई कि दो रतनू बन्धु परदेश से पिंगल विद्या प्राप्त कर अपनी दो ऊँटनियों पर कच्छ के रण से गुजरते हुए जैसलमेर की ओर आ रहे थे। वहाँ के एक दस्यु सरदार हीलो नामक जत के टोले ने उन्हें लूटकर मार डाला। सब कुछ लूट लिया गया मगर उनकी पींगली विद्या की किताबों को अनुपयोगी समझकर, उनकी लाशों के पास ही छोड़कर भाग खड़े हुए। उन किताबों के आधार पर यह पता चला कि ये मृतक वे ही रतनू हैं जो कुछ समय पहले पढाई के लिये परदेश गये हुए थे।

यह संदेश पाते ही, अत्याचारी को मारने के अपने कर्तव्य के निर्वाह हेतु तेजमालजी तत्पर हुए। तेजमालजी ने अपने विश्वासपात्र सात शूरवीर घुड़सवारों को साथ लिया और कच्छ के रण की तरफ कूच किया। हिलो जत का भेद लेने के लिये तीव्र गति से भूंयातरा ठाकुर के पास पहुँचे। तेजमालजी का उद्देश्य जानकर भूंयातरा ठाकुर ने कहा कि हीलो जत से वैर लेना कोई हंसी खेल नहीं है। मैं आपको उसके बारे में कुछ कहकर मुसीबत मोल लेना नहीं चाहता।

भेद नहीं मिलने के कारण साथियों में निराशा फैली और भविष्य में कभी भेद मालूम कर बदला लेने के सुझाव आने लगे। तेजमालजी को यह बात नहीं जची, पर घोड़े वापस घेरकर अन्य किसी भेदिये की तलाश में चल पड़े। कच्छ के ही रण में एक भील ने उनका रास्ता रोका और पूछा कि आप लोग कौन हो? किस उद्देश्य से आए हो? तेजमालजी ने उसे सही बात नहीं बताई पर भील ने भी हठ किया। उसने कहा कि आप लोग अवश्य ही किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये आए होंगे क्योंकि कल जब आप इधर से जा रहे थे उस समय बड़े उत्साहित और उत्तेजित थे, लेकिन आज आप लोग बड़े निराश दिख रहे हैं। आप लोगों की चाल–ढाल में अन्तर लग रहा है, मुझे सही बात बताएँ।

तेजमालजी ने भील से हीलो जत का भेद लेने के लिये पहले भील को वचनबद्ध किया और फिर अपना परिचय देते हुए पूरी बात बताई। भील के सामने भी एक संकट खड़ा हो गया था लेकिन अपनी हिम्मत बाँधकर उसने अपनी परम्परागत वफादारी का परिचय दिया। भील ने पूरा भेद बताया। उसने यह भी सुझाव दिया कि हीलो जत पर आज ही आक्रमण किया जाए क्योंकि वह अभी–अभी अपने साथियों सहित किसी बड़े दौरे से लौटा है। अतः परेशान होकर थकान से चूर सभी सो रहे होंगे। लेकिन हिलो के कुत्तों को शान्त करने के लिये रिश्वत की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

रात में भील ने एक बकरा काटकर तेजमालजी के घोड़े के पावरे (घोड़े को दाना चराने का थैला) में कुत्तों के लिये डाल दिया। अब तेजमालजी व भील दोनों घोड़ों

पर सवार होकर, अपने सभी साथियों को भील की ढाणी में ही ऊंघते हुए छोड़कर हीलो के ठिकाने की ओर चले। अपने ईष्टदेव की कृपा तथा कर्तव्यनिष्ठा के भाव के प्रभाव से, भील के निर्देशों के आधार पर तेजमालजी हीलो के शयन कक्ष के दरवाजे तक पहुँच ही गये। इसका आभास भी हीलो के साथियों को नहीं हुआ। पहरेदार सो रहे थे लेकिन पशु पहरेदार पहरा दे रहे थे। भील ने उन्हें शांत करने के लिये बकरे का मांस भेंट किया। भेंट पाकर कुत्ते वफादारी भूल गए और शान्त हो माँस खाने लग गए।

आस-पास की जगह से ऊँचाई पर बने हीलो के शयन कक्ष में पहुँचकर तेजमालजी ने हीलो को ललकारा। वह दस्यु एक ही पल में उठ खड़ा हुआ। उसके शरीर के रोम-रोम जोश से खड़े हो गए। हीलो अपने सिर पर चोटी रखता था। जो ठेट जमीन तक लटकती रहती थी। वह सरिये की भाँति सीधी खड़ी हो गई। तेजमालजी ने तत्काल अपने वार से हीलो का सिर धड़ से अलग कर दिया और चोटी से पकड़ कर शीश को घोड़े के पावरे में डालकर भील के साथ वहाँ से चल दिये।

अपने पड़ाव स्थल भील की ढाणी पहुँचकर अपने साथियों को जल्दी तैयार होने को कहा। उनके साथियों ने इस बात पर थोड़ी नाराजगी व्यक्त की कि इस अभियान में हमें भागीदार क्यों नहीं बनाया गया। समय की माँग के अनुसार सभी जल्दी ही तैयार होकर वहाँ से चल दिए। भील ने बड़े सवेरे अपने रेवड़ तथा मवेशियों को इधर-उधर घुमाकर सारे पदचिह्न एवं साक्ष्य मिटा दिए।

तेजमालजी का टोला जैसलमेर की ओर कूच कर रहा था तब मार्ग में एक किसान की पत्नी ने इन्हें अपनी ढाणी में रोका और नाश्ते की मनुहार की। समय के अभाव के कारण तेजमालजी ने नाश्ते की जगह दूध-दही पीना स्वीकार किया। ये माड प्रदेशवासी दही के बड़े-बड़े माटूरे खाली करके मार्ग पर चल पड़े। क्योंकि इन्हें अतिशीघ्र जैसलमेर रियासत की सरहद में प्रवेश करना था। उस समय यह प्रसिद्ध था कि कोई भी व्यक्ति अपना कर्तव्य निर्वाह कर जैसलमेर की सरहद में घुस जाता तो फिर उसका पीछा नहीं होता था।

उधर हीलो जत के साथी भील की ढाणी होते हुए किसान पत्नी की ढाणी पहुँचे। किसान पत्नी ने उन्हें भी नाश्ते का आग्रह किया। हीलो के साथी अलग-अलग बर्तनों में दही लेकर एक-दो मटूरे भी खाली न कर सके। किसान पत्नी ने पूछा कि तुम किसके यहाँ कटक लेकर जा रहे हो तो उन्होंने बताया कि हम हीलो जत के हत्यारों का पीछा कर रहे हैं। किसान पत्नी ने बताया कि मैंने सुबह देखा है कि वे सब एक ही खून (कुटुम्ब) के हैं और एक ही बर्तन में खाने वाले हैं। उनके डील-डोल व खुराक से यही स्पष्ट है कि तुम उनको जीतने या पकड़ने में पूर्णतया असमर्थ हो और असफल रहोगे। अत: मेरी मानो तो वापिस चले जाओ। हीलो के लोग वहीं से वापस चले गए। तेजमालजी ने चारणी माँ की बात रखकर अपना कर्तव्य निर्वाह किया। धन्य है तत्कालीन चारण-राजपूत गठजोड़।

हीलो जत हिलावियो, तेजल गिरावियो ताज।
रामसिंघ रो सुत सपूत, आदर तेजल को आज।।
हीलो करतो हैरान, कटक काट करयो काम।
जुग-जुग याद रहसी, नर तेजल रो नाम।।

*

जब जो कर्तव्य सामने आए उसका दृढ़ता के साथ पालन करो, चाहे वह कर्तव्य किसी पापी के मारने से सम्बन्ध रखता हो, चाहे किसी दीन-दुखिया के दुखहरन हित करने का। प्रत्येक दशा में स्थिर मन बने रहने का स्वभाव बन जाना चाहिए।

- वृन्दावनलाल वर्मा

विश्वामित्र जी ने ब्रह्मर्षि का पद कैसे प्राप्त किया

– हनुवन्तसिंह नंगली

राजा विश्वामित्र एक बार अपनी सेना के साथ पृथ्वी की परिक्रमा को निकले और चलते-चलते महर्षि वसिष्ठ के आश्रम पहुँचे। महर्षि वसिष्ठ ने राजा का भव्य स्वागत किया। महर्षि वसिष्ठ ने फिर राजा विश्वामित्र से पूरी सेना सहित आतिथ्य ग्रहण करने को कहा। महर्षि वसिष्ठ द्वारा बार-बार आग्रह करने पर राजा विश्वामित्र ने उनका आतिथ्य स्वीकार कर लिया।

वसिष्ठ जी ने इसके पश्चात भोजन के प्रबन्ध हेतु कामधेनु को बुलाया। कामधेनु ने विविध प्रकार के भोजन का प्रबन्ध कर दिया। कामधेनु द्वारा तैयार किया स्वादिष्ट भोजन खाकर विश्वामित्रजी की सेना तृप्त हो गई।

भोजन के पश्चात विश्वामित्रजी ने वसिष्ठ जी से कामधेनु की मांग की और बदले में एक लाख गायें लेने को कहा पर वसिष्ठ जी ने किसी भी कीमत पर कामधेनु को देने से इन्कार कर दिया। उन्होंने विश्वामित्रजी से कहा कि यह कामधेनु ही मेरा सर्वस्व है। विश्वामित्रजी ने फिर रथ, घोड़े, सोने की जंजीरों से बन्धे हाथी और करोड़ों गायें देनेकी पेशकश की पर वसिष्ठजी ने किसी भी कीमत पर कामधेनु देने से इन्कार कर दिया। जब वसिष्ठजी ने कामधेनु को देने के लिये स्पष्ट तौर पर इन्कार कर दिया तब विश्वामित्रजी अपनी सेना के बल पर काधेनु को जबरदस्ती खेंचकर ले जाने लगे। कामधेनु ने इस पर झटका देकर विश्वामित्रजी के सैनिकों से अपने आपको छुड़ा लिया और वसिष्ठजी के पास जाकर विलाप करने लगी। वसिष्ठजी ने कामधेनु से कहा कि विश्वामित्रजी की सेना बलशाली है और मैं उसका मुकाबला नहीं कर सकता। वह मुझसे बहुत अधिक शक्तिशाली है।

कामधेनु ने इस पर वसिष्ठजी से कहा कि मैं आपके ब्रह्मबल से भरी हुई हूँ। मैं इस दुष्ट राजा का घमण्ड चूर कर दूंगी। वसिष्ठजी ने इस पर कामधेनु को सेना उत्पन्न करने को कहा। सबला कामधेनु ने हुंभा शब्द का उच्चारण किया और हजारों सैनिक उत्पन्न हो गये और विश्वामित्रजी की सेना का संहार करने लगे। सबला द्वारा उत्पन्न किये हजारों सैनिकों ने विश्वामित्रजी की सेना को नष्ट कर दिया। विश्वामित्रजी के सौ पुत्र अपनी सेना का विनाश देखकर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर वसिष्ठजी की ओर दौड़े परन्तु वसिष्ठजी ने एक ही हुंकार से उन सबको जलाकर राख कर दिया। पुत्रों और सेना के नष्ट होने पर विश्वामित्रजी का सारा घमण्ड मिट गया और वैराग्य उत्पन्न हो गया। इस पर एक पुत्र को राज्य संभलाकर हिमालय के समीप महादेवजी की तपस्या करने चले गए। महादेवजी ने तपस्या से प्रसन्न होकर विश्वामित्रजी को उनके चाहे अनुसार धनुर्वेद व अस्त्रों की जानकारी दी। महादेवजी फिर अन्तर्धान हो गये। विश्वामित्रजी अस्त्र-शस्त्रों को पाकर घमण्ड में भर गये और उन्होंने वसिष्ठजी को मरा हुआ समझ लिया। वसिष्ठजी के आश्रम जाकर विश्वामित्रजी ने उन अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया जिससे आश्रम जलने लगा। ऋषि-मुनि, पशु-पक्षी आश्रम से भागने लगे। आश्रम सूना हो गया। इस पर क्रोधित होकर वसिष्ठजी ने अपना ब्रह्मदण्ड संभाला। विश्वामित्रजी ने आग्नेय अस्त्र लेकर वसिष्ठजी को ललकारा। वसिष्ठजी ने इस पर कहा कि मैं तेरा घमण्ड चूर कर दूंगा। कहाँ तेरा अस्त्र बल और कहाँ मेरा ब्रह्मबल। विश्वामित्रजी ने फिर अनेक अस्त्र छोड़े पर वसिष्ठजी का ब्रह्मदण्ड उन सबको निगल गया। विश्वामित्र अन्त में पराजित होकर शान्त हो गये। विश्वामित्र ने महसूस किया कि ब्रह्मतेज ही सबसे बड़ा बल है और फिर उन्होंने ब्रह्मतेज प्राप्त करने हेतु तपस्या करने का निश्चय किया और अपनी रानी के साथ दक्षिण दिशा में जाकर घोर तप करने लगे। एक हजार वर्ष की तपस्या के बाद विश्वामित्रजी के सामने ब्रह्माजी प्रकट हुए और बोले कि तुमने तपस्या से तीनों लोकों को जीत लिया है, तू राजर्षि है। विश्वामित्रजी को यह बात अच्छी नहीं लगी उन्होंने फिर तप शुरू कर दिया।

इसी समय इक्ष्वाकु वंश में त्रिशंकु राजा हुए जो यज्ञ करना चाहते थे। उन्होंने इस हेतु वसिष्ठजी से प्रार्थना की परन्तु उन्होंने मना कर दिया। इस पर राजा ने उनके पुत्रों से प्रार्थना की परन्तु उन्होंने भी मना कर दिया और राजा को चाण्डाल होने का शाप दे दिया जिससे राजा त्रिशंकु चाण्डाल हो गये। त्रिशंकु फिर विश्वामित्रजी के पास गये। उन्होंने उसे सहायता का आश्वासन दिया। विश्वामित्रजी ने फिर अपने पुत्रों को त्रिशंकु राजा का यज्ञ पूर्ण करने को कहा। विश्वामित्रजी की आज्ञा पाकर सब शिष्य व पुत्र इस काम में लग गये। शिष्यों

ने आकर बताया कि यज्ञ के लिये सभी लोग आ रहे हैं किन्तु वसिष्ठ और उसके सौ पुत्रों ने कहा है कि जिस चाण्डाल का यज्ञ कराने वाला क्षत्रिय है उसका हवि देवगण और ऋषिगण नहीं ग्रहण करेंगे। शिष्यों की बात सुनकर विश्वामित्र क्रोधित हो गये और कहा कि वे दुष्ट भस्म हो जावेंगे। इसके पश्चात् विश्वामित्रजी ने त्रिशंकु राजा की इच्छा पूरी करने हेतु यज्ञ आरम्भ करने को कहा इस पर ऋषियों ने यज्ञ की क्रियायें आरम्भ कर दी। विश्वामित्र इस यज्ञ के याचक बने और यज्ञ के सब काम पूरे किये परन्तु यज्ञ का भाग ग्रहण करने कोई भी देव नहीं आये। विश्वामित्र यह देखकर क्रोधित हो गये और राजा त्रिशंकु से कहा कि मैं अपने तेज से तुम्हें अभी स्वर्ग पहुँचाता हूँ और ऐसा कहते ही राजा त्रिशंकु स्वर्ग में जा पहुँचे। इन्द्र ने त्रिशंकु को स्वर्ग से वापिस जाने को कहा। त्रिशंकु उलटा लटककर पृथ्वी की ओर गिरने लगा। उसने विश्वामित्र से प्रार्थना की विश्वामित्र ने उसे ठहरने को कहा और राजा त्रिशंकु आकाश में ही लटका रह गया। विश्वामित्र ने फिर दक्षिण दिशा में दूसरे सप्तर्षियों की तथा अन्य नक्षत्रों की रचना की। देवगणों ने फिर विश्वामित्रजी से कहा कि राजा त्रिशंकु स्वर्ग में जाने का अधिकारी नहीं है पर विश्वामित्र ने कहा मैंने इसके स्वर्ग में भेजने की प्रतिज्ञा कर ली है मैं अपनी प्रतिज्ञा को झूठा नहीं कर सकता। जब तक तीनों लोक रहें तब तक मेरी बनाई हुई सृष्टि भी बनी रहे। देवगणों ने विश्वामित्र के इस आग्रह को मान लिया। देवगण फिर अपने-अपने स्थान को चले गए।

विश्वामित्र इसको दक्षिण दिशा का विघ्न मानकर दक्षिण दिशा से फिर पुष्कर तीर्थ आ गये और वहाँ घोर तप करने लगे। विश्वामित्रजी ने एक हजार वर्ष तक पुष्कर में घोर तप किया। व्रत की समाप्ति पर ब्रह्माजी व अन्य देवता वहाँ आये ब्रह्माजी ने कहा-हे विश्वामित्र तुमने अपने शुभ कर्मों से ऋषि का पद प्राप्त कर लिया है। यह कहकर ब्रह्माजी व देवगण वापिस चले गए और विश्वामित्र फिर तप करने लगे। बहुत समय बीतने पर एक दिन मेनका नामक सुन्दर अप्सरा पुष्कर तीर्थ में स्नान करने आई। उसे देखते ही विश्वामित्र कामवासना से वशीभूत हो गये और उसे अपने आश्रम में रहने को कहा। विश्वामित्र के कहने से मेनका वहाँ रहने लगी। उसके वहाँ रहने से विश्वामित्र का तप भंग हो गया। विश्वामित्र फिर बहुत लज्जित हुए और कुछ समय पश्चात मेनका को आश्रम से विदा कर दिया। विश्वामित्र फिर उत्तर पर्वत की ओर चले गए। कोशिकी नदी के तट पर तप करने लगे। तप करते एक हजार वर्ष बीत गए। देवगण उनकी तपस्या से भयभीत हो गए और ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी फिर विश्वामित्रजी के पास आये और उन्हें राजर्षि का पद देने की बात कही। विश्वामित्रजी ने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा कि आप मेरे लिये ब्रह्मर्षि शब्द का प्रयोग करें तभी मैं अपने को जितेन्द्रिय समझूंगा। ब्रह्माजी ने विश्वामित्र को इसके लिये और प्रयत्न करने को कहा और ब्रह्माजी फिर वहाँ से चले गए। विश्वामित्रजी ने फिर हाथों को ऊपर उठाकर और वायु भक्षण करते हुए फिर तप आरम्भ कर दिया और फिर एक हजार वर्षों तक घोर तप किया। विश्वामित्र के इस तप द्वारा इन्द्र व अन्य देवगण भयभीत हो गए इस पर इन्द्र ने रंभा अप्सरा को बुलाकर विश्वामित्र के पास जाने को कहा। रंभा अप्सरा इससे डर गई पर इन्द्र ने फिर उसे आश्वस्त किया। रम्भा अप्सरा फिर अपना रूप सुन्दर बनाकर विश्वामित्र के पास गई। विश्वामित्र ने इसे इन्द्र की कुचाल समझकर रंभा को दस हजार वर्ष तक शिला बने रहने का शाप दे दिया। पर क्रोध के कारण विश्वामित्र का भी तप भंग हो गया। विश्वामित्र ने अब निश्चय किया कि वे भविष्य में कभी क्रोध नहीं करेंगे। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि सौ वर्षों तक साँस नहीं लेंगे और जब तक ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त नहीं होगा तब तक बिना सांस लिए और बिना भोजन किये तप करूंगा। विश्वामित्र उत्तर दिशा छोड़कर पूर्व दिशा को चले गए। एक हजार वर्ष तक साँस नहीं लेने से उनके शरीर से धुआँ उठने लगा जिससे तीनों लोक व्याकुल हो गये। देवगण फिर ब्रह्माजी के पास गए और ब्रह्मर्षि का पद देने को कहा। इसके बाद सारे देवगण ब्रह्माजी को आगे करके विश्वामित्रजी के पास गए और वहाँ जाकर ब्रह्माजी ने विश्वामित्रजी से कहा कि तूने अपने उग्र तप से ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त कर लिया है। ब्रह्माजी को फिर विश्वामित्र ने प्रणाम किया और कहा हे देवगण! आप सब तथा महर्षि वसिष्ठ मुझे ब्रह्मर्षि कहकर पुकारें तभी मैं मानूंगा कि मेरी इच्छा पूर्ण हो गई। इस पर देवगण महर्षि वसिष्ठ के पास गए। महर्षि वसिष्ठ ने देवगणों की बात मान ली और विश्वामित्र से कहा कि अब तुममें ब्रह्मर्षि के सब गुण हो गए हैं और तुम ब्रह्मर्षि हो। यह सुनकर विश्वामित्र ने वसिष्ठ की पूजा की और देवगण अपने-अपने धाम को चले गए।

वाह रें संघ

– आसूसिंह

मैंने पहचान लिया तुमने पुकारा है मुझे,
हँस के तारों ने किया है इशारा मुझे।
बिजलियाँ लाख गिरे और उठे सौ तूफां,
मुझे क्या गम है, जब तुमने उभारा है मुझे।
आज मुझे परवाह नहीं है चाहे भले ही डूबूं,
मैं समझ लूंगा जहाँ तुम हो किनारा है मुझे।

जी नहीं, न तो मैं कोई शेरो–शायरी करने जा रहा हूँ और न ही कोई कविता लिख रहा हूँ। किन्तु उपरोक्त शायराना शब्द कुछ भाव प्रकट करते हैं। शायद प्रेमी के लिये ये शब्द कुछ और भाव दर्शाते हों पर मेरा निजी मत तो कुछ और ही है। मेरा हृदय से प्रकट सार्थक अर्थ तो अपने क्षात्रधर्म और अपने संघ रूपी उस समुद्र से है जो विशाल और लहरों युक्त सांसों में सजा संवरा है।

प्रेरणात्मक, उद्देश्यात्मक जीवन जीने में ही तो वास्तविक संतोष है। भले ही मुझे मेरे सूर्योदय का अभी इन्तजार हो, पर अंधेरा भी तो उजाले से सामञ्जस्य बनाये हुए है। जब संघ रूपी सत्संग में बैठा तो अंधेरा भी अपने आँचल को उठा ले गया।

मेरा मन अक्सर भटकता हुआ भविष्य–गर्भ की मंजिल से परे चला जाता था, उद्देश्यहीन हो जाता था। तब अन्तरात्मा झकझोर देती थी, कर्म पथ पर विचरण करने को प्रेरित करती थी। मुझे कई प्रश्नों के जवाब अभी तलाशने थे। हरदम सवालों के अधर–झूल में फंसा रहता था।

'मैं क्या हूँ?'

इसी सवाल की तलाश में था, हमारे उलझे हल ढूंढने के प्रयासों के उपरान्त भी मुझे अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं था। कभी–कभी अहसहाय सा इसकी गहराई में डूबने का प्रयास करता। समाज के इर्द–गिर्द भ्रमण किया पर कोई हृदयस्पर्शी शब्दों से पुकारे जाने की आवाज सुनाई नहीं दी। सोचा अभी तो रात्रि का समय है, शायद मुझे किसी ने पहचाना नहीं हो।

धैर्य साहस को बढाता है और सोचने की शक्ति को तीव्र कर देता है, किन्तु क्रोध धैर्य को मार देता है और पथभ्रष्ट कर देता है। धैर्य ने साथ नहीं छोड़ा था, तलाश जारी थी। तभी हवा को चीरते हुए एक आवाज सुनाई दी– 'किसकी तलाश है?' मेरे मुँह से निकल पड़ा–'स्वयं की'। तुरन्त उत्तर मिला–'तुमने अपना स्वाभिमान खो दिया है, तुम्हें स्वयं अपनी पहचान नहीं। तुम भी तो क्षात्रधर्म के एक चिराग हो।' असमंजस की स्थिति में था, पर उसे अभिवादन करते हुए 'पथिक' बन गया।

विचारों के ताने–बाने बुन रहा था कि एक चिराग दूर जगमगाता हुआ दिखाई दिया। उसी दिशा में चल पड़ा, कदम तेज हो गए थे। राह में कई व्यक्ति मिले, हो सकता है वे भी उस चिराग की ओर ही बढ रहे थे। मुझे तो अपने सत्य की तलाश थी, राह में क्यों उलझता। कुछ दूर पर एक सज्जन पुरुष से भेंट हो गई। आदरपूर्वक अभिवादन किया और अपने भावों को दबा नहीं पाया, पूछ ही लिया– 'सत्य क्या है?'

उत्तर मिला–'जीवन और मृत्यु दोनों कटु सत्य है, पर इस अवधि में भी कोई कर्तव्यहीन बन जाता है और कोई कर्तव्य पालक। जो कर्तव्य का रखवाला हो, वही जीवन और मृत्यु की सच्चाई की दुनिया में जीता है।'

उनकी बात को अपने मानसिक पटल पर बिठाकर दुबारा अपने पथ पर निकल पड़ा। थोड़ी दूर जाने पर जमा भीड़ दिखाई दी। पता चला वहाँ एक महादानी पुरुष का निवास है। उस महादानी का हाथ सदा ही ऊँचा रहता था, पर वे किसी की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखते थे। प्रश्न उठा–इतना दान करते हैं फिर भी आँखें हमेशा नीची रहती है क्यों? इतना देते हैं पर जिनको देते हैं, उनका चेहरा भी नहीं देखते, क्यों? दानी का तो उत्तर यही है–

देनहार कोई और है, देत रहत दिन रैन।
लोग भ्रम हम पर धरे, ताते नीचे नैन।।

(शेष पृष्ठ 34 पर)

मन की तल्लीनता

– संकलित

मन को वश में रखने के लिये अध्यात्म-प्रसंगों में सदा कहा और दोहराया जाता है; पर यह नहीं बताया जाता है कि यह किस प्रकार किया जाए? इसके लिये ध्यान, प्राणायाम जैसी विधियाँ बताई जाती हैं; पर देखा गया है कि इन विधाओं को अपनाने पर भी मन एकाग्र नहीं होता, पकड़-पकड़कर बिठाने पर भी मेंढ़क की तरह उछल जाता है। क्षणभर का अवसर मिलते ही कहीं-से-कहीं पहुँचता है। इस पकड़-धकड़ में प्रयत्नकर्ता ही थकता है। चंचलता तो मन का स्वभाव ही ठहरा। वह पवन की तरह एक जगह स्थिर नहीं रह सकता। पखेरू की तरह उसके उड़ते रहने जैसी आदत जो है। हिरन को पकड़कर बाँधना उसे हाथ-पाँव तोड़ लेने के लिये बाध्य करता है।

मन रस की खोज में मारा-मारा फिरता है। उसे उसी की लगन और ललक है। कस्तूरी हिरन को उस गंध के प्रति अत्यधिक लगाव होता है, उसी को खोजने के लिये, पाने के लिये वह लालायित होता है। जिधर भी मुँह उठता है, उधर ही दौड़ पड़ता है। यह भाग-दौड़ तब तक जारी रहती है, जब तक कि उसे गंध के उद्‌गम का पता नहीं चल जाता।

मन को सरसता चाहिए-ऐसी स्थिति, जिसमें रसास्वादन का अवसर मिले, आनंद की अनुभूति हो। नीरस क्रियाकलापों में उसे रुचि नहीं हो पाती, इसलिए वह अपना अभीष्ट तलाशने दूसरी जगह चल पड़ता है। तितलियाँ, भौंरे जहाँ-तहाँ उड़ते फिरते हैं, पर जब उन्हें सुगन्ध भरे फूल मिल जाते हैं, तब शान्ति के साथ स्थिरतापूर्वक बैठ जाते हैं और प्रमुदित होकर समय गुजारते हैं, फिर उन्हें उचटने-उखड़ने की आवश्यकता नहीं रहती। यहाँ बँधन उसके लिये कारगर होता है कि जिसकी तलाश है, उसे उपलब्ध करा दिया जाए। डोरी से जकड़ने पर तो पशु भी अपने हाथ-पैर तुड़ा लेते हैं। विवशता में ही कोई कैद में रहना स्वीकार करता है। हथकड़ी, बेड़ी, बैरक, ताला, संतरी आदि की व्यवस्था न हो, तो कोई कैदी जेल में रहना स्वीकार न करे। खिड़की खुलते ही तोता पिंजरे से निकल भागता है और फिर पीछे की ओर देखता तक नहीं। यही बात मन के संबंध में भी कही जा सकती है। उसे नीरसता पसंद नहीं, इसलिए उसे जिस-तिस खूँटे से बाँधने पर भी स्थिरता अपनाते नहीं बनती। उसे उन्मुक्त आकाश के मनोरम दृश्य देखने का चाव जो है।

मन को वश में करने के अनेकानेक लाभ हैं। वह शक्तियों और विभूतियों का पुंज है। जिस काम में भी लगता है, उसे जादुई ढंग से पूरा करके रहता है। कलाकार, वैज्ञानिक, सिद्धपुरुष, महामानव, सफल संपन्न सभी को वे लाभ मन की एकाग्रता और तन्मयता के आधार पर मिले हुए होते हैं। इस तथ्य को जानने वाले इस कल्पवृक्ष का पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं; भला दुधारू गाय को, अरबी घोड़े को कोई क्यों नहीं चाहेगा? पर वह हाथ आए तब न!

आमतौर से कामुकता, जिह्वा-स्वाद, सैर-सपाटे, विलास-वैभव, यश-सम्मान पाने की सभी की इच्छा होती है। उन्हीं को खोजने की मन कल्पनाएँ करता और उड़ानें उड़ता रहता है। विकल्प जब दूसरा नहीं दीखता तो उसी कुचक्र में उलझे रहना पड़ता है। जहाज के मस्तूल पर बैठे कौवे को कोई और गंतव्य भी तो नहीं दीखता। मन को कोई ऐसा स्थान या ऐसा काम जो उसकी रुचि का हो, उसे सुहाए, मिलना चाहिए।

रुचियाँ न किसी की सदा एक-सी रही है, न आमतौर पर रहती हैं। वे बदलती रहती हैं या बदली जा सकती हैं। छोटे बच्चे खिलौनों के लिए मचलते हैं। कुछ बड़े होने पर सामर्थ्यों के साथ खेल-खिलवाड़ के लिये उत्सुक रहते हैं। तरुण होने पर अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने की लगन लगती है। युवक होने पर धन कमाने, गृहस्थ बनने की इच्छा होती है। बूढ़े भजन करते और कथा सुनते हैं। बचपन में बढ़ी हुई स्फूर्ति हर घड़ी कुछ-न-कुछ करते

रहने की उमंग करती रहती थी, पर बूढ़े होने पर विश्राम करना और चैन से दिन काटना सुहाता है। ये परिवर्तन बताते हैं कि मन का कोई एक निश्चित रुचि-केन्द्र नहीं है। व्यक्तित्व के विकास और परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ वह अपना रुझान बदलता रहता है। जमीन के ढलान के अनुरूप नदी-नाले अपनी दिशा मोड़ते और चाल बदलते रहते हैं। मन का भी यही हाल है। वह चट्टान की तरह हठीला नहीं, मिट्टी की तरह उसे गीला किया जा सकता है और चतुर कुम्हार की तरह किसी भी साँचे में ढाला जा सकता है। इस बदलाव में आरम्भिक अड़चनें तो आती हैं, पर सिखाने-साधने पर सरकस के जानवरों की तरह ऐसे तमाशे दिखाने लगता है, जो उनकी जन्मजात प्रकृति के अनुरूप नहीं होते। मन को भी इसी प्रकार एक दिशा से दूसरी दिशा में ले जाया जा सकता है-एक प्रकार के अभ्यास से विरत करके दूसरे प्रकाश के स्वभाव का बनाया जा सकता है।

जंगली वन्यपशु अनाड़ियों की तरह भटकते हैं, पर जब वे पालतू बन जाते हैं तो मालिक की इच्छानुसार अपनी गतिविधियों को बदल देते हैं। मन के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। उसकी रँगीली उड़ानें वासना-तृष्णा की जन्म-जन्मांतरों से अभ्यस्त रही हैं, इसीलिए इस जन्म में भी वही पुराना-पहचाना मार्ग ही जाना-पहचाना, समझा-बूझा लगता है, अतएव स्वेच्छाचार के लिये वह आतुर फिरता है, किन्तु मनुष्य पर अनेक बंधन हैं। पशुओं की तरह वह कुछ भी कर गुजरने के लिये स्वतंत्र नहीं है। मर्यादाएँ, वर्जनाएँ, जिम्मेदारियाँ एक सीमा तक ही उसे स्वतंत्र रहने के लिये विवश करती है। अस्तु, एक जगह काम बनता न देखकर मन दूसरी जगह दौड़ता है। मृगतृष्णा में भटकने वाले हिरन की तरह उसकी कुलाँचें मार्ग-कुमार्ग पर भटकती रहती हैं। कल्पनाओं के अंबार छाए रहते हैं। बंदर जैसी उछल-कूद जारी रहती है। किसी डाली पर देर तक बैठे रहने की अपेक्षा उसे जिस-तिस का रंग-ढंग देखने और उन्हें हिलाने पर मिलने वाले चित्र-विचित्र अनुभव की तरह विभिन्नताएँ और विचित्रताएँ देखने की उमंग उठती रहती है। यही है मन की भगदड़, जिसे रोकने के लिये मूलभूत आधार बदलने की आवश्यकता पड़ती है।

मन का केन्द्र बदला जा सकता है। पशु-प्रवृत्तियों की पगंडडियाँ उसकी देखीभाली हैं, पर मानवीगरिमा का स्वरूप समझने और उसके शानदार प्रतिफल का अनुमान लगाने का अवसर तो उसे इसी बार इसी शरीर में मिला है, इसलिए अजनबी मन की अड़चन होते हुए भी तर्क, तथ्य, प्रमाण तथा उदाहरणों के सहारे उसे यह समझाया-जताया जा सकता है कि पशु-प्रवृत्तियों की तुलना में मानवीगरिमा की कितनी अधिक श्रेष्ठता है? विवेकशीलता के आधार पर यह निर्णय-निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आदर्शवादिता और कर्त्तव्यपरायणता अपनाने पर उसके कितने उच्च स्तरीय परिणाम प्रस्तुत हो सकते हैं?

जप-तप द्वारा मन को निगृहीत तो किया जा सकता है; पर आज हथेली पर सरसों जमाने की तरह उसका प्रतिफल लोग तत्काल चाहते हैं। धैर्य और निष्ठा के अभाव में यह असंभव है। इसके अतिरिक्त जप-ध्यान की कुछ परम्पराओं में यहाँ तक कहा जाता है कि मन को अपना काम करने दिया जाए और योगाभ्यासी अपना कार्य करे। उनका तर्क है कि मन को अपना रास रचाते रहने देने की छूट देकर हम उसके विकार और विकृति को निकलने देने में सहायक होते हैं। इससे उसे बलपूर्वक रोकना उसकी शुद्धिप्रक्रिया में बाधा डालता और स्वाभाविकता को भंग करता है। यह तो वैसी ही बात हुई, जैसे किसी साधक को असंयम की छूट मिल जाए। वह यौनाचार भी बरते और साधना भी करे। यौनसुख चाहने वालों को साधना में सफलता नहीं मिल सकती। इसी प्रकार जो सिद्ध-साधक बनना चाहते हैं, उन्हें यौन-इच्छा को तिलांजलि देनी होगी। इतना ही नहीं, हर प्रकार से मन को नियंत्रित करना पड़ेगा। ये दो विपरीत और विरोधाभासी स्थितियाँ हैं। इससे असमंजस पैदा होता और दुविधा उत्पन्न होती है, अतएव वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मानसिक निरोध के लिये कोई सरल और सुविधाजनक उपाय ढूंढ़ना पड़ेगा। यह कर्मयोग के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं हो सकता।

पुराने ढंग की ईश्वरभक्ति में मन लगाने और साधनाओं में रुचि लेने के लिये परामर्श दिया जाता है। किन्तु पुरातन तत्त्वज्ञान को हृदयंगम कराए बिना उस दिशा में न तो विश्वास जमता है, न मन टिकता है। ***बदली हुई परिस्थितियों में हम कर्मयोग को ईश्वरप्राप्ति का आधार मान सकते हैं। कर्त्तव्य को, संयम को, नीति-नियम एवं पुण्य-परमार्थ को ईश्वर का निराकार रूप मान सकते हैं। कार्यों के साथ आदर्शवादिता का समावेश रखा जा सके तो वह सम्मिश्रण इतना मधुर एवं सरस बन जाता है कि उस पर मन टिक सके।*** बया अपने घोंसले को प्रतिष्ठा का प्रश्न मानकर तन्मयतापूर्वक बनाती है। हम भी अपने क्रियाकलापों में मानवीगरिमा एवं सेवाभावना का समावेश रखें तो उस केन्द्र पर भी मन की तादात्म्यता स्थिर हो सकती है, उसे इस प्रकार भी नियमित-नियंत्रित किया जा सकता है।

*

पृष्ठ 16 का शेष

आध्यात्मिक अनुभूतियों की सत्यता

दिया : मैं प्रवचनकार नहीं हूँ, मैं प्रेक्टिस करने वाला (पेशेवर) हूँ। (यहाँ अंग्रेजी के *Practice* शब्द पर श्लेष है। अंग्रेजी में *Practice* का अर्थ डाक्टरी का पेशा तथा आचरण दोनों होता है)। धर्म का उपदेश देना पर्याप्त नहीं है। आध्यात्मिक जीवन के बारे में बातें करना पर्याप्त नहीं है। हमें कुछ वास्तविक साधना करनी चाहिए। अधिकांश लोग साधना से कतराते हैं, लेकिन यदि आध्यात्मिक जीवन हमें हमारे वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार प्रदान न करे, आध्यात्मिक सत्यों का अनुभव करने में हमें सक्षम न बनाए तो उसका क्या अर्थ? बुद्ध के सन्देश, ईसा के सन्देश, श्रीरामकृष्ण के सन्देश का क्या अर्थ है? वे हमारे आत्मसाक्षात्कार का मार्ग हमें बताते हैं, लेकिन यदि हम सत्य का अनुभव न करें तो वे हमारे लिये अर्थहीन है। आध्यात्मिक परम्परा के अभाव में पश्चिम में ईसा के सन्देश का क्रियान्वयन अब नहीं हो रहा है और केवल बाह्य छिलका भर बचा हुआ है। ईसा को समझने के पूर्व एक ईसाई को ईसा की चेतना की उपलब्धि करनी होगी। बुद्ध को समझने के पूर्व एक बौद्ध व्यक्ति को बुद्ध की चेतना प्राप्त करनी होगी।

(क्रमशः)

पृष्ठ 18 का शेष

स्वाधीनता का दीवाना : मेदिनीराय परिहार

के गौरवशाली इतिहास में चार चाँद लगाने की प्रक्रिया को पूर्ण करता है।

महाराणा सांगा के समकालीन होने के कारण शायद मेदिनीराय जनलोकप्रियता से वंचित रहे। अन्यथा कोई कारण नहीं कि ऐसे वीर पुरुष की जयंति या बलिदान को राजपूत समाज याद भी न करे। जयंति मनाना या बलिदान दिवस पर कोई सभा आयोजित करना तो दूर अधिसंख्य राजपूत समाज मेदिनीराय के बारे में जानता ही नहीं है। हमारे पूर्वजों का इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा कि जिनके बलिदानों, त्याग और तपस्याओं, जिनकी वीरता और शौर्यता के कारण जनसाधारण राजपूत समाज को पूर्ण मान-सम्मान, आदर और इज्जत देता है हम उन पूर्वजों के प्रति कितने कृतघ्न हैं कि वर्ष में एक दिन भी उनकी याद में कहीं एकत्र होकर श्रद्धांजलि अर्पित करने की रस्म भी पूरी नहीं करते हैं।

परिहार वंश का एक वीर और महान् योद्धा था मेदिनीराय जो किसी समय राजपूत शक्ति का केन्द्र था और तलवार का धनी था। किसी ने सत्य ही लिखा है कि भारत वह भूमि है जहाँ ईश्वर अवतार लेता है, वीर अपने रक्त से अपनी मातृभूमि का तिलक करते हैं, साहित्यकार अपनी कलम से अपनी मातृभूमि का शृंगार करते हैं। धन्य है वह भूमि भारत और इस भूमि के सपूत।

बहुत विद्वान होने से मनुष्य आत्मिक गौरव नहीं प्राप्त कर सकता। इसके लिये सच्चरित्र होना परमावश्यक है। चरित्र के सामने विद्वता का मूल्य बहुत कम है। – **मुंशी प्रेमचन्द**

ईर्ष्या

– *श्री जोगराजसिंह*

जो खाने-पीने में अच्छे हैं, मित्रों को भी खूब खिलाते हैं और सभा-सोसायटियों में भी खूब भाग लेते हैं; बाल-बच्चों से भरापूरा परिवार है, नौकर भी सुख देने वाले और पत्नी भी अत्यन्त मृदुभाषिणी; भला एक सुखी मनुष्य को और क्या चाहिए? मगर वे सुखी नहीं हैं।

जिस मनुष्य के हृदय में ईर्ष्या घर बना लेती है, वह उन उपलब्ध सुविधाओं से आनन्द नहीं उठा सकता है जो उसके पास मौजूद है, बल्कि उन वस्तुओं से दुख उठाता है, जो दूसरों के पास है। वह अपनी तुलना दूसरों के साथ करता है और इस तुलना में अपने पक्ष के अभाव उसके हृदय पर दंश मारते रहते हैं। दंश के इस दाह का भोगना कोई अच्छी बात नहीं है, मगर ईर्ष्यालु मनुष्य करे भी तो क्या, आदत से लाचार होकर उसे यह वेदना भोगनी पड़ती है।

ईर्ष्या की बड़ी बेटी का नाम निन्दा है। जो व्यक्ति ईर्ष्यालु होता है, वही बड़े किस्म का निन्दक भी होता है। दूसरों की निन्दा वह इसलिए करता है कि उस प्रकार उनकी निन्दा करने से वे लोग जनता अथवा मित्रों की आँखों से गिर जाएँगे और जो उनका स्थान रिक्त होगा उस पर मैं अनायास ही बिठा दिया जाऊँगा। मगर ऐसा न आज तक हुआ है और न होगा। दूसरों को गिराने के प्रयत्नों से अपने को आगे बढाने की कल्पना ही गलत है, ऐसा हो नहीं सकता। एक बात और है कि संसार में कोई भी मनुष्य मात्र निन्दा से नहीं गिरता है और जो गलत राह पर ही चलता है वह बिना निन्दा के भी लोगों की नजरों से गिर जाता है।

मनुष्य निन्दा से नहीं गिरता है, उसके पतन का कारण तो उसमें सद्गुणों का ह्रास होना होता है। इसी प्रकार कोई भी मनुष्य दूसरों की निन्दा करने से अपनी उन्नति नहीं कर सकता। उसकी उन्नति तभी होगी, जब वह अपने चरित्र को निर्मल बनाएगा तथा अपने गुणों का विकास करेगा। ईर्ष्या का काम जलाना है और सबसे पहले वह उसी को जलाती है, जिसके हृदय में उसका जन्म होता है।

ईर्ष्या चिन्ता से भी बदतर वृति है क्योंकि इससे मनुष्य के मौलिक गुण भी कुंठित हो जाते हैं। मृत्यु शायद फिर भी दोष नहीं प्रसारित करती, किन्तु ईर्ष्या से जला-भुना व्यक्ति जहर की एक चलती-फिरती गठरी के समान है, जो हर जगह वायु को दूषित करती फिरती है। ईर्ष्या मनुष्य का चारित्रिक दोष ही नहीं बल्कि इससे मनुष्य के आनन्द में भी बाधा पड़ती है। जब भी मनुष्य के हृदय में ईर्ष्या का उदय होता है, वह सोचता है कि निन्दा के बाण से अपने प्रतिद्वंद्वी को बेधकर हँसने में बड़ा मजा है, यह मजा ही ईष्यालु व्यक्ति का सबसे बड़ा पुरस्कार है। मगर यह हँसी मनुष्य की नहीं, राक्षस की होती है। यह मजा दैत्यों का मजा है।

ईर्ष्या प्रारम्भ होती है दूसरे को अपने से आगे पाकर। ऐसी स्थिति में ईर्ष्या का जहर पनपने से पूर्व ही यदि प्रतिद्वंद्विता का भाव दृढ कर उस व्यक्ति, जाति, दल के समकक्ष बनने के प्रयास में जुटा जाए तो यह स्थिति लाभदायक बन जाती है। ऐसा तभी संभव है जब भाव सकारात्मक हो और समकक्ष बनने का प्रयत्न रचनात्मक हो। अक्सर तो ऐसा ही होता है कि ईष्यालु व्यक्ति यह महसूस करता है कि कोई वस्तु है या क्षमता है जो उसके पास नहीं है और दूसरे के पास है। किन्तु वह नहीं समझ पाता कि इस वस्तु को, क्षमता को कैसे प्राप्त किया जाना चाहिए। तब गुस्से में आकर वह पड़ोसी, मित्र या किसी व्यक्ति को अपने से आगे मानकर उससे जलने लगता है। इस पर सज्जन लोग तो यही सोचते हैं कि यह भला आदमी मुझसे क्यों जलता है, मैं तो इससे किसी सम्पर्क में भी नहीं हूँ और न मैंने इसका कुछ बिगाड़ा है। कई बार तो ईष्यालु व्यक्ति उस व्यक्ति से भी ईर्ष्या भाव रखता है, जिसने कई बार उसका काम किया हो या संकट में साथ दिया हो। जिनका चरित्र उज्ज्वल है, जिनका हृदय निर्मल है और विशाल है, वे ऐसे ईष्यालु व्यक्तियों से भी सदैव अच्छा ही भाव रखने का प्रयास करते हैं।

ईर्ष्या से बचने का उपाय है मानसिक अनुशासन।

(शेष पृष्ठ 34 पर)

स्नेह वही दे सकता जो प्रकृति से महान है

– जैसू खानपुर

एक संस्कृत कवि कहता है–मुझे वह वस्तु बताओ जो दूध की तुलना कर सके। दूध पवित्र है, सहज मधुर है। उसे तपाया गया, विकृत किया गया, मथा गया फिर भी वह स्नेह देता है। स्नेह वही दे सकता है, जो प्रकृति से महान है। स्नेह वही दे सकता है जो समर्थ है। लघु और असमर्थ इसलिये लघु और असमर्थ होता है कि उसमें स्नेह देने की क्षमता नहीं होती।

लक्ष्मण ने सुग्रीव से कठोर वचन के लिये क्षमा माँगी–

'मया त्वं परूषाण्युक्तः
तत क्षमस्व सखे! मम।'

लक्ष्मण असमर्थ नहीं थे। उनमें स्नेह की शून्यता को स्नेह से भरने की सामर्थ्यता थी, इसलिये उनके मुँह से क्षमा का स्वर निकला।

सिन्धु–सौवीर के अधपति उद्रायण ने उज्जयिनीपति चण्ड प्रद्योत से क्षमा माँगी। एक था बंदी और दूसरा था बंदी बनाने वाला। एक था पराजित और दूसरा विजेता। उद्रायण ने कहा–''महाराज प्रद्योत, आज सम्वत्सरी का दिन है। यह मैत्री का महान पर्व है। इस अवसर पर मैं तुम्हें हृदय से क्षमा करता हूँ, तुम मुझे हृदय से क्षमा करो।'' महावीर का मानना था कि एक छोटा हो और दूसरा बड़ा उनमें मैत्री नहीं हो सकती। मैत्री समानता के धरातल पर हो सकती है। क्षमा दे और ले नहीं, तो देने वाला बड़ा और नहीं देने वाला छोटा हो जाता है। उनमें मैत्री नहीं हो सकती। मैत्री उनमें हो सकती है, जो क्षमा दे और क्षमा ले।

महाराज प्रद्योत ने कहा–''क्या कोई बंदी क्षमा दे सकता है?'' उद्रायण आगे बढ़ा और प्रद्योत को मुक्त कर अपने बराबर बिठा लिया। दोनों हृदय स्नेह की शृंखला में बंध गये।

स्नेह जीवन के हिमालय का वह प्रपात है जो गंगा यमुना बन बहता है और धरती के कण कण को अभिषक्त, अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित करता है

स्नेह जीवन के सूर्य का वह प्रकाश है जो गहन अंधकार को भेदकर मानस की हर सतह को आलोक से भर देता है। जिसके जीवनकी गहराई में स्नेह श्री सरिता प्रवाहित नहीं है वह क्या क्षमा करेगा?

धर्म की आत्मा है स्नेह, प्रेम या मैत्री। जो सूखा है वह कठोर है। कठोरता और धार्मिकता अग्नि और जल की भाँति एक साथ नहीं रह सकती। जो चिकना है वह कोमल है। कोमलता और अधार्मिकता अग्नि और जल की भाँति एक साथ नहीं रह सकती।

क्या आप मुझे उन वचनों को धार्मिक कहने की स्वीकृति देंगे, जो मनुष्य को मनुष्य के प्रति कठोर बना रहे हैं, मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बना रहे हैं। मनुष्य के प्रति मनुष्य के मन में घृणा भर रहे हैं और अपनी सुरक्षा या विस्तार के लिये मनुष्य से मनुष्य की बलि माँग रहे हैं। जो वचन आत्मा की पवित्र वेदी से हटकर जातीय परम्परा से एक रस हो जाता है, वह स्नेह के बदले रूक्षता की धार बहाता है और एकत्व के बदले विभाजन को बल देता है। ऐसे वचन और एकत्व के बदले विभाजन को बल देता है। ऐसे वचन और विचारों से मनुष्य जाति बहुत त्रास पा चुकी है। अब उसे उसी विचारधारा की अपेक्षा है, जिसके अन्तस्तल में स्नेह और वातावरण में क्षमा का अजस्र स्रोत बह रहा हो।

प्रेम में भीगी हुई सूखी रोटियाँ, प्रेम में रंगे हुए मोटे कपड़े और प्रेम के प्रकाश से आलोकित छोटी–सी कोठरी अपनी इस विपन्नता में भी वह स्वाद, वह शोभा और वह विश्राम रखती है, जो शायद देवताओं को स्वर्ग में भी नसीब नहीं है।

– मुंशी प्रेमचन्द

अपनी बात

नकल न करें, अपने स्वभाव को समझें, परखें और फिर उसी को निखारें। यह आवश्यक नहीं कि दूसरे हमको जैसे हम हैं वैसा स्वीकारें, पर हम स्वयं जैसे हम हैं वैसा अपने को स्वीकारें। हमारी आम आकांक्षा तो यही होती है कि सब लोग हमें स्वीकारें। उस आम आकांक्षा के कारण ही हम भटक जाते हैं। एक कौवा भागा जा रहा था। एक कोयल ने पूछा की चाचा, कहाँ भागे जा रहे हो, बड़ी तेजी में हो। उस कौवे ने कहा कि मैं पूरब दिशा की तरफ जा रहा हूँ। क्योंकि यहाँ के लोग बड़े बेहूदे हैं, नासमझ हैं। यहाँ के लोग शास्त्रीय संगीत समझते ही नहीं। मैं यहाँ जब भी शास्त्रीय संगीत छेड़ता हूँ तो बस लोग भगाते हैं। ताली बजाने लगते हैं कि हटो, भागो। मैं अब पूरब की ओर जा रहा हूँ क्योंकि मैंने सुना है कि पूरब के लोग शास्त्रीय संगीत के बड़े पारखी हैं। मैं तो अब पूरब में जाकर ही अपना गीत गाऊँगा।

कोयल ने उस कौवे से कहा,-चाचा, जैसी तुम्हारी मर्जी वैसा करो। जहाँ जाना हो जाओ, मगर ख्याल रखो कि लोग सब जगह एक जैसे ही हैं और तुम्हारा शास्त्रीय संगीत कहीं भी पसन्द नहीं किया जाएगा। अच्छा तो यही हो कि तुम इसे संगीत समझना छोड़ दो। अच्छा तो यही हो कि तुम जैसे हो, वैसा अपने को स्वीकार करो।

जरूरी नहीं कि हम जैसे हैं, दूसरे हमें वैसा ही स्वीकार करें। साधक के लिये तो यह प्रश्न उठे कि दूसरे स्वीकार न करें तो क्या करें? तब उसे सावधान हो जाना चाहिए कि दूसरों के द्वारा स्वीकार किए जाने की आकांक्षा के साथ चलेंगे तो झूठे हो जाएंगे, भटक जाएंगे। क्योंकि लोग जैसा स्वीकार करते हैं वैसा अपने को दिखलाने का प्रयास किया जाएगा तो वह नकली होगा, पाखण्ड होगा। जैसे गुलाब यदि जुही बनना चाहे तो जुही तो बन नहीं सकता, तब लोगों को दिखाने का एक ही उपाय है कि बाजार से जुही के प्लास्टिक के फूल खरीद लाए और अपना गुलाबपन ढांक कर ऊपर जुही के फूल लाद दे। मगर ये जुही के फूल झूठे हैं।

इसीलिए संन्यासी कहता है-मुझे न सत्कार चाहिए, न सम्मान चाहिए। न मुझे अपमान की चिन्ता है। मैं तो जैसा हूँ वैसा ही जीऊँगा, उसी को निखारूंगा। कोई सम्मान दे तो ठीक, कोई अपमान दे तो ठीक, यह उसी का प्रश्न है, उसी की समस्या है, मेरा उससे कोई लेना-देना नहीं। न मैं सम्मान से प्रसन्न होऊँगा और न किसी अपमान से अप्रसन्न होऊँगा। मैं सम्मान और असम्मान के सिक्कों को कोई मूल्य ही नहीं देता। इनसे मुझे कोई चालित न कर सकेगा। कोई मेरा मालिक न हो सकेगा।

यही तो सिक्के हैं, जिनके आधार पर दूसरे हमारे मालिक हो जाते हैं। लोग कहते हैं-हम सम्मान देंगे, अगर हमारी बात मानकर चलो। स्वभावतः यदि सम्मान लेना चाहते हो तो कुछ चुकाना भी पड़ेगा और लोगों की बात मानकर चलेंगे तो पथ का भटकाव तो हो ही जाएगा। इसलिए यदि चित्त शुद्धि चाहते हैं तो घोषणा करनी पड़ेगी और उसी के अनुसार चलना पड़ेगा कि न मुझे सम्मान चाहिए और न अपमान का भय। मैं जैसा हूँ, वैसा हूँ।

जहाँ पाखण्ड नहीं वहीं शुद्धि है। शुद्ध का अर्थ क्या है? दूध में पानी मिला देते हैं, तो उसे अशुद्ध क्यों कहते हैं? क्या इसलिए कि उसमें अशुद्ध पानी मिलाया गया है? तो दूध में शुद्ध पानी मिला दें, बिल्कुल शुद्ध, गंगाजल या डिस्टिल्ड वाटर मिला दें तो क्या फिर दूध अशुद्ध नहीं होगा? दूध तो फिर भी अशुद्ध होगा। शुद्ध जल शुद्ध दूध में मिलाने से भी दूध अशुद्ध होता है। और ऐसा भी न सोचें कि दूध ही अशुद्ध होता है, पानी भी अशुद्ध हो रहा है। हालांकि पानी की कोई कीमत नहीं, इसलिए कोई फिक्र नहीं करता, नहीं तो पानी भी अशुद्ध हो रहा है। यह अजीब गणित है कि दो चीजें मिल रही हैं और दोनों ही अशुद्ध हो रही हैं। अशुद्ध का अर्थ होता है विजातीय। दूध दूध है, पानी नहीं। इसलिए उसमें चाहे कितना ही शुद्ध पानी डालो, विजातीय ही डाला जा रहा है, दूध की वास्तविकता को नष्ट किया जा रहा है। पानी भी अशुद्ध हो गया क्योंकि उसकी भी स्वाभाविकता नष्ट हो गई।

अशुद्धि का अर्थ होता है : मेरे स्वयं के स्वभाव से भिन्न को थोप लेना। शुद्धि का अर्थ होता है : अपने स्वभाव में जीना। रंचमात्र समझौता न करना। जो समझौता नहीं करता वह संन्यासी ही है। चाहे प्राण जाएँ तो जाएँ पर समझौता नहीं करता। न स्वयं समझौता करता है, न दूसरे पर दबाव डालता है कि कोई दूसरा उससे समझौता करे।

क्षत्रिय के घर में जन्मे हैं, परम्परा से जो क्षत्रियोचित स्वभाव मिला है, उसी स्वभाव को निखारें तो जीवन सार्थकता के राजमार्ग पर चल रहा है। अन्य स्वभाव को ओढने का प्रयास करेंगे तो सार्थकता की डगर से जीवन भटक जाएगा। क्षत्रियत्व के स्वभाव पर आवरण जो आगए हैं, उन्हें अभ्यास से दूर हटाएँ और अपने स्वभाव को निखरित और दृढ रूप प्रदान करें, इसमें ही मुक्ति है।

✲

पृष्ठ 27 का शेष

वाह रे संघ

अर्थात् देने वाला कोई दूसरा है (परमात्मा है) किन्तु लोग मुझे दाता समझते हैं, इसलिए मैं शर्म के मारे आँखें नीचे कर लेता हूँ।

ऐसी दानवीरता को दिल में बिठाकर मेरी खोज भी उस चिराग की रोशनी के लिये तीव्र हो गई जो जीवन का मार्ग दिखाता है। ऐसे चिराग में किस चीज की अहमियत होती है? शायद व्यक्ति की आत्मा ही ऐसा व्यवहार करने को कहती है। आत्मा की अहमियत ही सर्वप्रथम है।

दूर एक हल्की-सी रोशनी दिखाई दी, उसी ओर कदम बढा दिए थे। अब आशा और विश्वास का सागर लहराने लगा। ज्यों-ज्यों आगे बढ रहा था, त्यों-त्यों चिरागों की संख्या में भी वृद्धि हो रही थी। मैं एकदम नजदीक पहुँच रहा था, लगा मेरी मंजिल मेरे करीब है।

जी हाँ, मुझे मेरी मंजिल मिल गई थी। एक जानी पहचानी आवाज ने मेरा ध्यान आकर्षित किया-'आ जाओ, मंजिल यही है जिसकी तुम्हें तलाश है। तुम्हारे प्रत्येक सवाल का जवाब मिलेगा।' निकट बुलाया, आँखों से अश्रुधारा बह निकली। बोले-'कब के बिछुड़े हो और आज मिले हो। बाकी भाई कहाँ हैं? उन्हें भी तो यहीं आना है। तुम लोगों को तो जैसे अकेले चलने की आदत पड़ गई है।'

जैसे-जैसे समय गुजर रहा था बाकी साथी भी आते रहे। देखते ही देखते संघ बन गया। ध्यान से देखा तो पहचाना कि कुछ लोग तो वे ही हैं जो मुझे रास्ते में मिले थे।

मेरी आँखों से अंधेरा दूर हो गया, मुझे अपना किनारा मिल गया। अब यही इच्छा रह गई कि अब डूबूं तो संघ रूपी सागर में ही डूबूं अन्यथा यह जीवन निरर्थक है। अपने कर्तव्य ज्ञान और स्वाभिमानी विचारों का जागरण हुआ और मन सद्बुद्धि के सागर में तैरने लगा। आज धरती और आसमान क्षात्रधर्म के चिरागों की रोशनी से रोशन हो रहे थे, अन्धेरे को भी रोशन कर दिया। नजारा देखकर कह उठा,- ***'वाह रे संघ'***।

✲

पृष्ठ 31 का शेष

ईर्ष्या

जो व्यक्ति ईर्ष्यालु स्वभाव का है, वह अगर ईर्ष्या से छुटकारा पाना चाहता है तो उसे फालतू बातों के बारे में सोचने से बचना चाहिए। उसे तो अपने अभाव को पहचानना चाहिए। कौनसा वह अभाव है जिसके कारण मैं दूसरे के भाव को देखकर जलता हूँ। अपने अभाव को पहचान कर उस अभाव की पूर्ति के लिये रचनात्मक प्रयास क्या हैं, उन प्रयासों में जुटकर अभाव की पूर्ति करनी चाहिए। जिस दिन उसके भीतर ऐसी जिज्ञासा आएगी, उसी दिन से उसको ईर्ष्या करने का न समय मिलेगा और न ही ईर्ष्या-वृति उसे बाँध सकेगी। जो विद्वान है, ईर्ष्या को बुरी बताता है, मगर स्वयं में बसी ईर्ष्या को निकालने का प्रयास नहीं करता उसे यह समझना चाहिए कि कुछ करने वाले ही इतिहास-निर्माता होते हैं। सिर्फ सोचते रहने या विद्वता प्रकट करने वाला इतिहास के भयंकर रथ-चक्र के नीचे पिस जाता है। इतिहास का रथ वह हाँकता है, जो सोचता है और सोचने के अनुसार करता है। हम स्वयं का आकलन करें, कहीं किसी आवरण को ओढकर ईर्ष्या तो अन्दर नहीं बैठी है? यदि है तो तुरन्त रचनात्मक सक्रियता से इस जहर को बाहर निकालें।

केन्द्रीय जल-शक्ति मंत्री श्री गजेन्द्र सिंह शेखावत (महरोली), सांसद राज्यवर्द्धन सिंह राठौड़ एवं सांसद दीया कुमारी को

हार्दिक बधाई एवं भविष्य हेतु शुभकामनाएं

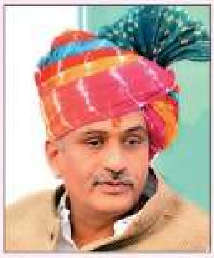
गजेन्द्र सिंह शेखावत

राज्यवर्द्धन सिंह राठौड़

दीया कुमारी

रणजीतसिंह आलासन, जालोर
हाल-मुम्बई 9769131066

मदनसिंह गुड़ा बालोतान, जालोर
हाल-मुम्बई 9322851940

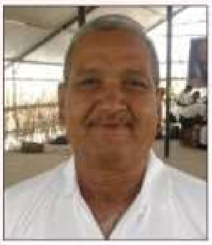
पाबूदानसिंह दौलतपुरा, नागौर
हाल-मुम्बई 9322932702

वाघसिंह रेवत, जालोर
हाल-मुम्बई 9769266360

जेठूसिंह आकोली, जालोर
हाल-मुम्बई 9867386489

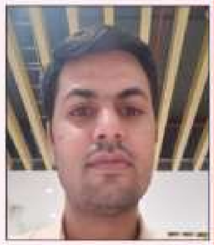
अचलसिंह माकरोडा, सिरोही
हाल-मुम्बई 9930977741

जबरसिंह तेना, जोधपुर
हाल-मुम्बई 7597419537

बाबूसिंह काठाड़ी बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9322029515

राजेन्द्रसिंह काठाड़ी, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9967777779

करणसिंह कलापुरा, जालोर
हाल-मुम्बई 9595176914

अचलसिंह बागसीन, सिरोही
हाल-मुम्बई 9022659993

हड़मतसिंह रेवत, जालोर
हाल-मुम्बई 9967692594

गुलाबसिंह कूका, जालोर
हाल-मुम्बई 9930780402

प्रतापसिंह राजपुरा, पाली
हाल-मुम्बई 9867196471

जितेन्द्रसिंह जेला, सिरोही
हाल-मुम्बई 9619424483

बलवन्तसिंह नरसाना, जालोर
हाल-मुम्बई 9869536873

चक्रवर्तीसिंह देसु, जालोर
हाल-मुम्बई 9028282889

अशोकसिंह दुदिया, जोधपुर
हाल-मुम्बई 9870733140

नारायणसिंह रेवत, जालोर
हाल-मुम्बई 9320803528

पीरसिंह उमरलाई, बाड़मेर
हाल-तिरुपुर 9751077882

विक्रमसिंह लीलसर, बाड़मेर
हाल-मुम्बई 9320887515

भगवानसिंह तेजावास, जालोर
हाल-मुम्बई 9930828337

महावीरसिंह काम्बा, जालोर
हाल-मुम्बई 8080845552

गणपतसिंह गुड़ादेवड़ान, पाली
हाल-मुम्बई 7506862228

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

जुलाई, सन् 2019

वर्ष : 56, अंक : 07

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,

जयपुर-302012

दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com

Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह